यशोधरा परिशीलन

(विवेचनात्मक अध्ययन)

लेखक—
श्री शिवस्वरूप गुप्त एम० ए०, बी० टी०,
साहित्यरत्न, साहित्य भास्कर, साहित्योपाध्याय,
साहित्य भूषण, साहित्यालंकार, आचार्य आदि
रिसर्च स्कालर, भारतीय
हिन्दी विश्व विद्यालय
बम्बई

प्रकाशक
नवयुग पुस्तक भण्डार
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

[मूल्य ?]

प्रकाशक
श्री परमेश्वरदीन वर्मा, एम० ए
संचालक
नवयुग पुस्तक भण्डार
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

मुद्रक
श्री प्रेमनारायण भार्गव
अध्यक्ष, प्रेम प्रिंटिंग प्रेस
लखनऊ

प्राक्कथन

भाग्य के निर्मम थपेड़ों ने मुझे उस स्थान पर ला घसीटा, जहाँ मनुष्य औरों को क्या स्वयं को ही पहिचानना भूलने लगता है; यह भटका हुआ मानव स्वयं अपने अन्तःकरण से प्रश्न करता है "क्या वास्तव में मेरा अस्तित्व यही है ? अपने जीवन के चंचल प्रभात में अपनी आयु के १६ बसन्त पार करके भी मैं यही विचारता रहता हूँ कि इतना सब कुछ करने पर भी मुझमें गति क्यों नहीं ? काव्य, कहानी, नाटक और आलोचना आदि सभी को मैं आडम्बर मात्र समझकर केवल उन्हें मनोरंजन का साधन मात्र मानता हूँ। उपयुक्त सभी से लगभग मुझे घृणा सी है पर यह सब होते हुए भी मैं आज स्वयं भी उसी पथ का पथिक बना हुआ हूँ। मुझे स्वयं इस बात का ज्ञान नहीं हो पाता कि मेरा जीवन मेरे वैयक्तिक आदर्शों से क्यों एकदम विपरीत है। प्रायः लोगों की धारणा है कि उन्हें कोई समझ नहीं पाता, किन्तु मेरे समक्ष विडम्बना यह है कि मैं स्वयं को ही नहीं समझ पा रहा हूँ।

पूर्ण विश्वास है इस बात का कि अथक प्रयास करने पर भी मुझे इस क्षेत्र में सफलता का मुख देखने को न मिलेगा। भाग्य के इन कठोर थपेड़ों से मुझे जीवन पर्यन्त संग्राम करना पड़ेगा। इस जीवन में एक क्षण के लिए भी मैं शान्ति का अनुभव न कर सकूँगा। यही कारण है कि मैं भी जीवन-संग्राम में

हटा हुआ हूँ। मैंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि यदि जीवन मुझे शान्ति नहीं लेने देता तो मैं भी उसे शान्ति नहीं लेने दूँगा। हम दोनों ने मिलकर एक मध्यपथ अपना लिया है। आप कहेंगे 'कौन सा ?' उत्तर है पुस्तकालय। यद्यपि यह बड़ा ही कठोर मध्य मार्ग है जो मुझे चैन की वंशी नहीं बजाने देता, पर क्या करूँ ? लाचारी है। जब तक कोई अन्य मध्यपथ न मिले तब तक इसे भी कैसे छोड़ दूँ ?

सहृदय पाठक वृन्द ! इसी कठोर और अशान्ति के वातावरण में रहकर यह पुस्तक लिखी है। ओह ! जब मैं अपनी उन कठोर एवं विषम परिस्थितियों का स्मरण करता हूँ तो मेरा हृदय बाँसों उछलने लग जाता है। मैं काँप उठता हूँ अतीत की स्मृतियों से। खैर कुछ भी हो, जिस प्रकार एक वीर नवयुवक असफल रहने पर भी निरन्तर किसी कार्य के सम्पन्नार्थ प्रयास करता है और अन्त में उसे सफलता मिलती है; वही दशा मेरी भी हुई। किसी प्रकार यह पुस्तक पूर्ण हो ही गई।

अन्त में मैं अपने उन महानुभावों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक को यह रूप देने की अप्रशंसनीय चेष्टा की। इस सम्बन्ध में मेरे परम मित्र श्री सूरजकुमार गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पुस्तक को दुबारा देखने और उसमें यथास्थान सुधार करने का श्रेय मेरी जीवन-सहचरी श्रीमती गिरीशकुमारी गुप्ता को प्राप्त है। इसके लिए मैं किन शब्दों में उनकी प्रशंसा करूँ।

—शिवस्वरूप गुप्त

विचार-माला

यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त की एक श्रेष्ठतम कृति है। साहित्य में अब तक इस प्रकार के काव्यों का सर्वथा अभाव रहा है। इस लघु काव्य में कवि ने गम्भीर भावों, उत्कृष्ट विचारों और रम्य कल्पनाओं का अविरल स्रोत प्रवाहित किया है। यही कारण है कि पाठक और श्रोता कभी रसस्वादन से वंचित नहीं रहता। किन्तु फिर भी भावों की गहनता के कारण काव्य के मूल भावों तक पहुँचने में पाठक को अवश्य कठिनाई अनुभव होती है।

प्रस्तुत पुस्तक यशोधरा-परिशीलन में लेखक ने गुप्त जी की उत्तम पुस्तक के सभी पहलुओं पर विचार किया है। आरम्भ से अन्त तक किसी भी विषय को लेखक ने अछूता नहीं छोड़ा है। सच तो यह है कि यह पुस्तक अब तक प्रकाशित समस्त पुस्तकों में श्रेष्ठ है। आशा है, इससे हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियों का बड़ा उपकार होगा।

सरला सक्सेना बी० ए०, एल० टी०

प्रकाशकीय वक्तव्य

मनीषा मानव-जीवन एवं साहित्य गत सत्य के दर्शन का सफल प्रयास है। इसका ध्येय है जीवन तथा साहित्य में सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थापना तथा कुत्सित, कुरूप एवं अशिवं का बहिष्कार। प्रस्तुत पुस्तक 'यशोधरा-परिशीलन' इसी सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है।

योग्य लेखक श्री शिवस्वरूप गुप्त एम, ए, बी. टी., साहित्यरत्न ने राष्ट्र कवि डा० गुप्त विरचित 'यशोधरा' को भलीभाँति समझने में सहायतार्थ इसे प्रस्तुत किया है। इसमें विद्वान् लेखक ने ऐतिहासिक तत्त्व, प्राकृतिक वर्णन, चरित्र-चित्रण, छन्द-विधान, भाषा एवं रस-संचार पर बड़ा ही मनोहारी एवं शास्त्रीय परिशीलन किया है। कृति स्वयं ही इसकी साक्षी है। कृति-पठन के पश्चात् ही मेरे कथन का सत्यासत्य जाना जा सकता है।

लोकोक्ति है "नाई बाल कितने" "यजमान सामने हैं" अधिक क्या कहूँ।

हाँ, परीक्षार्थियों की सुविधा के हेतु मैंने पुस्तक के अन्त में द्वितीय भाग के रूप में 'यशोधरा' के क्लिष्ट शब्दार्थ एवं व्याख्या तथा सम्भावित प्रश्न और जोड़ दिये हैं, जिसका सारा उत्तरदायित्व प्रकाशक का है 'परिशीलन' लेखक का उससे दूर का भी सम्बन्ध नहीं है।

—प्रकाशक

विषय-सूची

शब्दार्थ, व्याख्या एवं सम्भावित ... प्रश्न द्वितीय भाग में

परिचयात्मक
युगान्तर कारी भारतेन्दु

रीति-काल की सीमा जब हिन्दी-साहित्य की काली परिधि बन चुकी थी, उसी समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ। उनके द्वारा हिन्दी-साहित्य ने अन्धकार में प्रकाश का मुख देखा। जब किसी रीतिकालीन कवि में मुग़ल-सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध आन्दोलन करने का साहस न रहा; तब से वे भाटों के रूप में उन का गुण-गान कर अपनी जीविकोपार्जन करने लग गए। भारतीय साहित्य का इन्द्र भूषण इस बात को कब सहन कर सकता था। पक्षपात से अपनी दृष्टि खाली कर भारत की इस अमर-विभूति ने औरंगजेब के विरुद्ध आवाज उठाई। परिणाम-स्वरूप उसका राज-सिंहासन थर्रा उठा। आधुनिक काल के उदय-कालीन सूर्य भारतेन्दु ने भी उसी प्रकार अंग्रेजी सत्ता के प्रति भीषण विद्रोह किया। भारतीय, हिन्दी-साहित्य की इस विभूति ने उस आकर्षण का आविर्भाव किया, जिसने साहित्य-क्षेत्र में फिर अनेकों क्वार उत्पन्न कर दिये।

आधुनिक युगीन हिन्दी-साहित्य पर भारतेन्दु बाबू ने बड़ा उपकार किया, वह उनका चिर-ऋणी रहेगा। सर्व प्रथम भारतेन्दु बाबू को यह देखकर कि भारतीय समाज की रक्षा करनेवाला इस समय कोई कवि नहीं है, और साहित्य, जो जीवन की धारा को अनुप्राणित करता है, गतिरुद्ध हो चुका है, बहुत बुरा लगा। कविगण राजाओं तथा नवाबों के मनोरंजन का साधन बने हुए थे, परिणाम-स्वरूप भारतीय साहित्य, गतिवद्ध न होकर गतिरुद्ध होता जा रहा था और उससे साहित्य-धारा में विषैले कीटाणु लग रहे थे तथा अंग्रेजी सत्ता स्वेच्छा से भारतीयों का शोषण कर रही थी, यह बात भारतेन्दु बाबू को असहनीय हो उठी।

[illegible] से विवश होकर, भारत की इस [illegible] कवि के उत्तरदायित्व को निभाने के लिये [illegible] दशा। रीति-काल के कवियों ने कविता-[illegible] कर उसे दोष-पूर्ण बनाकर उसकी नैस-[illegible] कर दिया था। रीतिकालीन कवि काव्य की [illegible] रिक थे। संकीर्ण दृष्टि से नायक-नायिकाओं के [illegible] अश्लील वर्णन कर, उनकी क्रियाओं को देखकर [illegible] के उद्यानों से सम्पूर्ण प्रवृत्ति की क्षुद्र कल्पना करके [illegible]किशोरी को राजाओं के आगे नचाया करते थे। भाषा [illegible] जो उनकी आज्ञा में निरन्तर तत्पर रहती थीं, चाहे [illegible] दी, उनके ये ही इने-गिने शब्द इधर से उधर [illegible] थे। वे उसकी शोभा को अलंकारों द्वारा सुसज्जित [illegible] सुन्दरता में चार चाँद लगाने का प्रयास करते थे, तो [illegible] कविता-किशोरी अति भार के कारण शिथिल हो जाती [illegible] राजा लोग उनकी ऐसी ही अवस्था पर धन दे डालते थे। [illegible] समय साहित्य में शृंगार-रस की ही प्रधानता थी। सूरदास ने [illegible] महाभारत के कृष्ण को अवतार रूप में चित्रित किया तो रीति-[illegible] के भाटों ने अपनी वासनाओं की तृप्ति के हेतु उन्हें नायिकाओं के साथ प्रेम-विहार करनेवाला ही अपने काल में चित्रित किया। [illegible]वानोपासना के क्षेत्र में कविता का विषय एक प्रकार से पतनो-[illegible] होता गया; फलस्वरूप वह जन-साधारण के कल्याण की वस्तु न हो पाया, उसे बुरी भाँति राजा लोगों ने अपने प्रासादों में बन्द कर लिया। भक्तिकालीन कवियों ने भगवान् का गुणगान करना ही अपना प्रमुख ध्येय समझा, तो रीति-काल के कवियों ने राजाओं की [illegible] कर, पैसा कमाना ही अपना प्रधान कर्तव्य चुना।

[illegible] के निवारण की युक्ति किसी भी काल के कवियों ने [illegible] एक शब्द में यूँ भी कहा जा सकता है कि यदि

भक्ति-कालीन कवियों की अपनी कल्पना, अनुभूति तथा आदर्श वादिता के स्वर्ग में चक्कर लगाने का प्रयास किया, तो रीति-काल के भाट उनसे नीचे रहकर यथार्थता के नर्क में घूमते रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि इन भाटों को राजाओं के महलों तक ही अपनी पहुँच अच्छी प्रतीत होती थी। कविता-किशोरी के चरण अभी तक पृथ्वी तथा मानव-लोक तक नहीं आये थे। बस यही वह विषय था, जो कि हमारे अज्ञात-कोहनूर भारतेन्दु के हृदय में काँटे के समान पीड़ा उत्पन्न कर रहा था। उनका विचार था कि कविता-मानव लोक की वस्तु है, अतः मानव की वन्दना ही उसका ध्येय होना चाहिए। कविता की भाषा उस समय बड़ी अस्त-व्यस्त थी, अतः वह कब तक शैली के डगमगाते हुए पैरों से प्रगति कर सकती थी। भारतेन्दु बाबू ने इस क्षेत्र में अपने कदम उठाये और एकदम ही भाषा-शैली तथा भावों में आवश्यक परिवर्तन करने के महत्त्व को समझा। उन्होंने अपने मित्रों सहित इस स्वप्न को वास्तविकता देने की चेष्टा की, किन्तु भाव-परिवर्तन के पश्चात् रुक गये। यह कार्य सबसे अधिक दुस्तर था। उन्होंने रीतिकालीन कवियों के भावों की धारा को रोककर, उसे राष्ट्रीय भावों का नवीन रूप प्रदान किया, जो कि जन-साधारण के निकट था। उपासना-क्षेत्र में भगवान् से राजा और राजा से जनता का ही क्रम अभी आवश्यक था, अतः उन्होंने नारा लगाया—

अंग्रेज-राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै दुःख ख्यारी॥

उक्त नारे की ध्वनि ने जनता के कानों में एक भारी गूँज उठाकर उसे चौंका दिया। इससे साहित्य-क्षेत्र में युगान्तर हुआ। देखते-देखते ही इस लघु नारे ने एक भयंकर रूप अपना लिया। राजाओं से घृणा की जाने लगी और भिखारियों की पूजा। अंग्रेजों के विपक्ष में आन्दोलन करने का साहस जनता में आया। परि-

णाम-स्वरूप एक भीषण स्वाधीनता-संग्राम के लिए जनता कटिबद्ध हुई। सन् १६०० तक ब्रजभाषा के पुराने ही सागर में उसका जल हिलोरें मारता रहा।

द्विवेदी-युग

उस युग का अन्त सन् १६०० में होता है, जिसमें रीतिकाल की भाव-परम्परा को बदलने का आश्चर्य-जनक प्रयास किया गया था। भारतेन्दु बाबू के निरन्तर प्रयास करने पर भावधारा ने पुराना रूप त्यागकर नवीन रूप धारण कर लिया। उन्होंने रीतिकाल की उस भावना को, जो कि नायिकाओं के प्रति थी, गंगा की पावन धारा में मिलाकर राष्ट्र, मातृ-भूमि तथा समाज-सेवा की भावना को जन्म दिया। इस परिवर्तन के पश्चात् भाव-धारा के उस को भी बदलने की आवश्यक्तानुभव की गई, जिसमें अब तक वह रही थी। यह कार्य १६००--२० तक लगभग बीस वर्षों में सम्पन्न सका। बीस वर्षों का यही समय द्विवेदी युग कहा जाता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस युग के निर्माण प्र वाले माने जाते हैं। साहित्य के भाव—क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण का हुई, वह समय यदि भारतेन्दु के कारण भारतेन्दु युग के नाम विभूषित किया जाता है, तो द्विवेदी युग में भी साहित्य में एक ऐ महान् परिवर्तन हुआ जो सदा स्मरण रहेगा। उस काल की भा क्षेत्रीय क्रान्ति तो द्विवेदी-युग में भी चलती ही रही, किन्तु । समय भाषा-क्रान्ति भी पूर्ण सफल रही। १६०० में प्रयाग सरस्वती का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका मानो भाषा पुनरुद्धार करने के लिए ही निकाली गई थी। इसके तीन व पश्चात् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस पत्रिका के सम्पाद नियुक्त हुए। आचार्य जी कवि भी थे, अतः कविता को जो साहित्य का प्रधान अंग थी, वे पुष्पित तथा फलित देखना चाहते

थे। उनकी लेखनी ने सर्व-प्रथम काव्य की भाषा में आवश्यक परिवर्तन करने का आन्दोलन उठाया। जनता को उस समय यह प्रयास केवल मूर्खता-पूर्ण ही जँचा। आचार्य जी ने व्रज का वहिष्कार कर खड़ी बोली को उसका आसन दिया। व्रजभाषा के प्रेमियों द्वारा इस बात का भीषण विरोध किया गया, पर आचार्य जी ने इस पर तनिक भी ध्यान न दिया। वे अबाध-गति से इस मार्ग की ओर उन्मुख होने लगे। सरस्वती द्वारा व्रज का पूर्णरूपेण बहिष्कार कर दिया गया। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य की काया ही पलट गई। बड़े बड़े प्रतिभाशाली कवि द्विवेदी जी के पथ-प्रदर्शन द्वारा खड़ी बोली को सर्वोच्च स्थान देने के लिए प्रयत्नशील हो गये। आचार्य जी ने सभी कवियों को खड़ी बोली में कविता करने का आदेश दिया और संस्कृत के ग्रन्थों का अध्ययन कर कवियों तथा कविता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए। कविता के सम्बन्ध में नवीन विषयों की ओर संकेत कर उन्होंने भारतेन्दु-युग की भाव-क्रान्ति को और भी अग्रसर किया।

भारतेन्दु काल में पुराने छन्दों का प्रयोग किया जा रहा था। इस युग में छन्दों ने भी अपना पुराना रूप त्यागकर नवीन रूप अपनाया। कवियों ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को भी अपनाया और उसमें सुन्दर तथा मनोहर रचनाएँ करना आरम्भ कर दीं। द्विवेदी जी के शिष्यों के अतिरिक्त अन्य कवियों ने भी उनके पथ का अनुसरण किया।

कसौटी बदलकर नए-पुराने सभी विषय कविता के लिए चुने गए। भावों में नवीन मिश्री घोलकर उन्हें रसीला एवं मधुर बनाया गया। द्विवेदी जी के आदेशानुसार कवि किसी भी विषय को अपनी कविता का क्षेत्र बना सकता था, परन्तु नवीनता की कसौटी पर कस कर। इस प्रकार रामायण, महाभारत, पुराण आदि

में से अनेकों शिक्षा लेकर उनमें राष्ट्रीयता का समावेश कविता में किया। भावों का दमन होने के भय से छन्दों के तुकान्त सम्बन्धी बन्धन को भी शिथिल त्याग देने का आदेश द्विवेदी जी ने दिया।

इस युग में भाषा पर व्याकरण का नियंत्रण रखने का बड़ा ध्यान दिया गया। अलंकारों की कृत्रिमता की अवहेलना कर भाषा की नैसर्गिक शोभा बढ़ाने का प्रयास इसी युग में हुआ।

रीतिकाल के सम्पूर्ण काव्य में प्रकृति की उपेक्षा दिखाई पड़ती है। भारतेन्दु ने काव्य में प्रकृति-वर्णन को स्थान देने के लिए अथक परिश्रम किया। किन्तु उस समय ब्रजभाषा के कारण, वे अपने प्रयास में असफल रहे। द्विवेदी युग में इसका प्रस्तुत वस्तु के रूप में वर्णन होने लगा। अलंकार प्रकृति के चिह्न बन गए। कविता से अलंकारों का इस युग में बहिष्कार किया जाने लगा। इस युग के कवियों ने प्रकृति-चित्रण के प्रति विशेष रुचि दिखाई। गिरि, निर्झर, सरिता, सागर आदि का सजीव चित्रण हमें इस काल में मिलता है। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से अनेक कवियों ने तो अपने काव्य के मध्य एवं अन्त में प्रकृति का सजीव चित्रण करने की परिपाटी ही चला दी।

इतिवृत्तात्मक काव्य ही इस युग में प्रचुरता से लिखे गए। सबसे बड़ी विशेषता इस युग की यही थी। ऐसे अनेकों वृत्त, जोकि अब तक कवियों द्वारा उपेक्षित रहे थे, द्विवेदी जी ने सरस्वती द्वारा कवियों के सम्मुख रखे। इस प्रकार पुराने कथानकों (Plots) को खोज-खोजकर काव्य का रूप इस युग में दिया गया।

छायावाद का आविर्भाव भी इसी युग में हुआ। सन् १९१३ में प्रसाद, पन्त, निराला आदि की छायावादी धारा का स्रोत साहित्य-क्षेत्र में तीव्र गति से प्रवाहित हुआ, जो १९२० के लगभग युगान्तर का कारण बना। परन्तु द्विवेदी-युगीन कवियों ने इससे प्रभावित होकर भी स्वयं को इस धारा से पृथक रखा। उन्होंने

प्राचीनता की अवहेलना तथा नवीनता का त्याग न किया। वे सदा हिन्दी साहित्य की प्रगति करने में तत्पर रहे।

उस युग का प्रतिनिधित्व करने के कारण आज के गीत-युग में भी इतिवृत्तात्मकता को न भूल सके। उन्होंने गीतों को काव्य की नवीन शैली में लिखकर प्रबन्ध काव्यों में उनका प्रयोग किया। समाज का झुकाव छायावाद तथा रहस्यवाद की ओर देखकर, उन्होंने भी नवीन ढंग से अपने काव्य में इसका समावेश किया। 'रंग में भंग' से लेकर आज तक के समस्त काव्यों में उन्होंने अनेक चरण रखे, किन्तु वे द्विवेदी-युग की भाषा-शैली, अलंकार, भाव तथा वस्तु आदि का त्याग न कर सके।

कविता में कथा की प्रधानता ही द्विवेदी-युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। इस दृष्टि से गुप्तजी ने उस युग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व किया। इस बात की पुष्टि गुरुकुल, जयद्रथ वध, विकट-भट, पंचवटी, वैतालिक साकेत, द्वापर, यशोधरा तथा नहुष आदि काव्यों से होती है। सामाजिक समस्याओं की गुप्त जी ने कभी अवहेलना न की। उनके काव्य में ईश्वर तथा राजाओं की प्रधानता होते हुए भी, उसमें मानव के सुख-दुःख को व्यापक करने का अनुपम प्रयास किया है। पुराणों तथा धर्मग्रन्थों से सम्बन्धित अनेकों कथाएँ आपने लिखी हैं। यही कार्य द्विवेदी युग के सभी कवियों ने करना चाहा किन्तु फिर भी गुप्त जी को छोड़कर उनमें से किसी को युग का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय प्राप्त न हुआ।

द्विवेदी-युग का एक महत्वपूर्ण सन्देश था—करुणा-मूलक मानव-प्रेम, अनहितार्थ बलिदान एवं राष्ट्र-जागरण। यह कर्म जितनी सफलता-पूर्वक आज तक गुप्त जी करते आए हैं उतनी सफलता-पूर्वक कोई कवि नहीं कर सका। राष्ट्र-जागरण की झलक हमें 'भारत-भारती' में दिखाई पड़ती है।

गुप्त जी के काव्य का मूल स्रोत द्विवेदी-युग था। वहीं से वह

जो रूप धारण कर चला, वह रूप सामयिक प्रभावों में अपना अस्तित्व नहीं खो सका। रहस्यवाद ने यदि उन्हें प्रभावित किया तो वह स्वयं कथाओं की उलझन में खो गया। छायावाद ने उन पर अपना प्रभाव डालने का प्रयास किया, तो वह भी उसी में लीन हो गया। प्रगतिवाद तथा गान्धीवाद के तो उनके समीप आकर मानो पैर ही झुक गए। यद्यपि गुप्तजी की कुछ रचनाओं पर छायावाद का प्रभाव पड़ा, किन्तु फिर भी वह द्विवेदी-युग की व्यापकता को नष्ट करने में सफल न हुआ। झंकार, साकेत तथा यशोधरा आदि में जो भी विशेषताएँ पाई गई वे छायावाद और प्रगतिवाद के युगों के समीप होते हुए भी द्विवेदी-युग का ही प्रतिनिधित्व करती हैं।

सारांश यह है कि द्विवेदी-युग की मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन किये बिना गुप्तजी की काव्य-धारा परखना दुस्तर ही नहीं, असम्भव ही है। वे आज तक जो कुछ लिखते आ रहे हैं उस सबकी जड़ें द्विवेदी-युग की भूमिका में हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि गुप्तजी द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि थे।

कवि परिचय

आधुनिक काव्य-सम्राट् कवि-वर मैथिलीशरण गुप्त का आविर्भाव संवत् १६४३ चिरगांव (झाँसी) में हुआ था। गुप्त जी के पिता श्रीरामचरण गुप्त बड़े ही काव्य-प्रेमी तथा हरिभक्त थे। वैष्णव-धर्मावलम्बी होने के कारण गुप्तजी के काव्य में भी उसकी छाप मिलती है। गुप्तजी द्विवेदी युग में प्रस्फुटित होकर खड़ी बोली काव्य-धारा के प्रतिनिधि के रूप में हिन्दी-साहित्य के काव्य-क्षेत्र की उन्नति-पथ पर अग्रसर करने की प्रेरणा करते रहे हैं। इसी से उनकी गणना हिन्दी के प्रमुख काव्यकारों में की जाती है। वे वास्तव में खड़ी बोली के प्रवर्तक हैं। उन्होंने अपने काव्य को

सर्वत्र, जातीय और राष्ट्रीय, नैतिक और धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक, सांस्कृतिक चेतना से युक्त कर रखा है। गुप्तजी के काव्य में युग जीवन को प्रेरित और संचालित करनेवाली सभी विचार-धाराओं और परम्पराओं ने साम्य रूप से स्थान प्राप्त किया है। उनका काव्य सर्वाङ्गीण और व्यापक रूप से आधुनिक युग का प्रतिनिधि सिद्ध होता है। इस लिए गुप्त जी आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं।

जिस समय गुप्तजी ने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया, उस समय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संरक्षण में खड़ी बोली हिन्दी कविता का माध्यम बनने का उपक्रम कर रही थी। यह वह समय था, जब धीधर पाठक खड़ी बोली और ब्रज दोनों के आकर्षण में फँस कर अपने लिए कविता का कोई भी माध्यम निश्चित नहीं कर पा रहे थे। यद्यपि 'एकान्त वासी' योगी के रूप में उन्होंने खड़ी बोली में कविता करने का आभास दिया था, परन्तु उनकी मनोवृत्ति बार-बार उन्हें ब्रज की ओर आकृष्ट कर रही थी। 'काश्मीर सुखमा' लिखकर आपने अपने आपको सिद्धहस्त कोमल कान्त के रूप में प्रकट किया है। उनका ब्रजभाषा पर स्नेह अन्त तक लक्षित होता है। उनकी कविता-कामिनी ब्रज और खड़ी बोली के पालने में लोरी लेती है। अन्य शब्दों में पाठकजी को खड़ी बोली के प्रवर्तक का श्रेय दिया जा सकता है, किन्तु उनकी आस्था ब्रज के ही प्रति थी। एक ओर हरिऔधजी अपने प्रियप्रवास द्वारा हिन्दी में युगान्तर उपस्थित कर रहे थे, दूसरी ओर श्री मैथिलीशरण गुप्त आचार्य द्विवेदीजी के स्वप्नों को कार्य रूप में परिणत कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। गुप्त जी की कविता को हम निम्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

१ राष्ट्रय-चेतना। २ सांस्कृतिक सन्देश।

३ युग जोवन की चिन्ता धारा।

राष्ट्रीय चेतना:—गुप्त जी का प्रारम्भिक काव्य भारत-भारती है। उर्दू के विख्यात कवि मौलाना हाली के छप्पर में जो मुसलमानों को जातीयता की चेतना प्रदान की गई है, वही गुप्तजी ने अपनी भारत-भारती में रखी है। इस पुस्तक में कवि ने अपनी जातीय की भावना निहित कर दी है। स्वयं कवि के ही शब्दों में:—

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए हैं, और क्या होंगे अभी!
आओ विचारें आज मिलकर यह समस्यायें सभी।

भारत-भारती में अतीत का गौरव-गान लक्षित होता है। उस वर्तमान युग के प्रतिशोध, क्षोभ और व्यथा एवं भविष्य की आशा तथा स्वप्न भरे पड़े हैं। स्वर्ग तुल्य भारत की पावन भूमि स्वर्णिम अतीत के दर्शन में उक्त ग्रन्थ के कवि ने अपनी चिर-संचित श्रद्धा उँडेल दी है। विद्या, कला, धर्म, शौर्य, शील, भक्ति, सभ्यता ज्ञान और संस्कृति की अनेकों झाँकियाँ भारत-भारती में दृष्टिगोचर होती हैं। वह भारतीय गौरव का उदात्त चल-चित्र है। भारतीय सभ्यता एवं आर्य-संस्कृति के प्रति कवि की श्रद्धा अविचल रूप उसमें अनुस्यूत है। वैदिक काल से भारत-भारती की रेखा आरम्भ होती है और फिर रामायण, महाभारत के युगों को लाँघती हुई बौद्ध काल को पार करती हुई तथा विक्रम का स्मरण कर उस रेखा पर आ पहुँचती है, जिसके आगे मुस्लिम साम्राज्य का उदय होता है। राष्ट्रीय चेतना की भी उस समय देश में वही अवस्था थी गुप्त जी ने उसी चेतना की अभिव्यक्ति की है। कवि पृथ्वीराज प्रताप तथा शिवाजी आदि का स्मरण कर कह उठता है:—

अन्यायियों का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी।
आखिर हुए अँग्रेज शासक राज्य है जिनका अभी॥

भारत की सांस्कृतिक चेतना को स्वामी दयानन्द ने भी प्रेरणा दी। उसी प्रकार गुप्त जी ने भी हिन्दू चेतना को जातीय रू

तो निस्सन्देह दिया है, किन्तु उसमें मुस्लिम विरोध नाममात्र को भी नहीं दीख पड़ता। यह है आपकी उदारता की भावना। गुप्त जी की दूसरी पुस्तक जयद्रथ-वध में भी राष्ट्रीय चेतना के दर्शन होते हैं। केवल अन्तर नाममात्र को है। जयद्रथ वध रस प्रधान काव्य है और भारत भारती सन्देश प्रधान। गुप्तजी की अन्य कृतियों में भी हमें राष्ट्रीय चेतना फलती हुई दीख पड़ती है। साकेत में भी राष्ट्रीय भावना की झलक दीख पड़ती है। उक्त पुस्तक गुप्त जी की अनुपम कृति है। राम के लोकसंग्रही रूप को उन्होंने समस्त आर्य जाति के उद्धारक के रूप में चित्रित किया है। देखिये:—

मैं आर्यों को आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
सुख-शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया॥
मन में नर वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥
अथवा आकर्षण प्रणय भूमि का ऐसा,
अवतरित हुआ मैं आज उच्च फल जैसा।

इस प्रकार साकेत में नर रूप नारायण के उदारचरित का गुण-गान किया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ में कवि का उद्देश्य यही नहीं रहा, साकेत की रचना का मूल उद्देश्य था उपेक्षिता उर्मिला का चित्रण। कवि रवीन्द्र के 'संस्कृत काव्य की उपेक्षाएँ' शीर्षक लेख से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने सरस्वती के काव्यकारों की उर्मिला-विषयक उदासीनता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और इसके लिए गुप्तजी को प्रेरणा दी। गुप्तजी ने इस काम को कार्य रूप

में परिवर्तन किया, और तब उन्होंने साकेत की रचना की । गु जी श्रीराम भक्त थे । अतः राम का उसमें उल्लेख होना परम स्वाभाविक था । फलतः यह ग्रन्थ भी एक प्रकार से रामचरित मा गया, जिसमें उर्मिला का चरित्र अत्यन्त विशद एवं विस्तृत रू से अंकित किया गया है ।

सांस्कृतिक सन्देश—गुप्तजी ने पौराणिक आख्यान-मूलक काव्य की सृष्टि की है ।

(क) जयद्रथ वध, वक-संहार, वन-वैभव, सैरन्ध्री, द्वापर और नहुष आदि महाभारत से सम्बद्ध हैं ।

(ख) पंचवटी और साकेत रामायण से सम्बन्धित हैं ।

(ग) शकुन्तला और शक्ति आदि पुराणों से ।

यह सब पौराणिक काव्य गुप्तजी को एक सांस्कृतिक कवि रूप में निश्चित करते हैं । कवि जीवन में शील, सौन्दर्य सौजन्य तथा मनुष्य की समस्त सत् प्रवृत्तियों की विजय दिखाना चाहता है । इन पौराणिक काव्यों में कवि को अपनी इच्छानुसार सारे विषय मिल गए हैं । पौराणिक काव्यों में द्वापर और नहुष का इस दृष्टि से विशेष स्थान है ।

कवि ने जिस स्थल पर ऐतिहासिक आधार लिया है, वहाँ भी उसके आकर्षण का आधार कोई न कोई तत्व ही है । यशोधरा नामक काव्य में वह उसकी तपस्या और बुद्ध की महानता से प्रभावित है । गुरुकुल में सिक्ख गुरुओं के त्याग एवं बलिदान की भावना तथा सिद्धराज में गुजरात के सिद्धराज को श्रद्धांजलि भेंट की है । इसके अतिरिक्त बंग भाषा के मेघनाद-वध, विरहणी व्रजांगना आदि ग्रन्थों ने भी गुप्त जी को मुग्ध किया है । उनके नायक और नायिकाओं ने जनता के हृदय पर अधिकार कर लिया है । गुप्तजी काव्य-कला के लिए कला नहीं मानते । यथा—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए ।

उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥'

यह कवि का कर्तव्य है। इसी आदेश की ओर साकेत के लक्ष्मण ने भी संकेत किया है। यथा—

हो, रहा है जो यहाँ सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा।
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है कला वह ही यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।

इस प्रकार गुप्त जी कला को आदर्श-वादिनी मानते हैं। उनके समस्त भावों में नैतिक और सांस्कृतिक सन्देश विद्यमान है।

युगजीवन की चिन्ता-धारा—गुप्त जी के काव्य में युग जीवन की पूरी छाया विद्यमान है। अनघ गीत काव्य में गांधी जी के सत्याग्रह का पूरा वर्णन है। साकेत में राम के आगे सविनय अवज्ञा भंग का चित्र जन-तंत्र के इस युग की स्मृति दिलाता है। द्वापर में अत्याचारी राजा के प्रति विद्रोहात्मक भावना की अभिव्यक्ति और सुधार की वाणी का दिग्दर्शन हमें प्राप्त होता है। काबा और कर्वेला में मुसलमान धर्म के प्रति श्रद्धांजलि भेंट की गई है। इस प्रकार गांधीवाद के सभी तत्वों ने आपके काव्य में स्थान पाया है। गुप्त जी ने अपने काव्य में चमत्कारात्मकता, वर्णात्मकता उपदेशात्मकता और भावात्मकता सभी का निर्देशन किया है।

रहस्यवाद—गुप्त जी की रहस्यवादी कविताओं में भारतीय उपनिषदों का सगुण और साकार ब्रह्म झाँकता दीख पड़ता है। सर्वं खल्विदम् उनके गीतों में साकार रूप धारण किए हुए हैं। कभी-कभी गुप्तजी अपने काव्य में देव से मीरा और कबीर के समान माया का खेल खेलते हैं। यथा—

ध्यान न था कि राह में कहाँ है और कंकड़ ढेला ढेर।
तू सागर मैं भला पकड़ने, तू मुझसे मैं तुझसे खेल॥

यदि तू कभी हाथ भी आया,
तो छूने पर निकली छाया,
हे भगवान यह कैसी माया।

संसार में वे विभिन्न मुक्ति के मार्गों की ओर संकेत करते हैं। यथा—

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं।
सब द्वारों पर भीड़ लगी है, कैसे भीतर जाऊँ मैं॥

दीन दुखियों और अपमानित प्राणियों में आप परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं—

गलिताङ्गों का गन्ध लगा मैं,
आया फिर तू अलख—जगाये,
हट कर मैंने तुझे हटाया,
बार-बार तू आया॥

इस प्रकार हम गुप्त जी को एक सफल रहस्यवादी कवि पाते हैं।

गीतकार गुप्त जी—गुप्त जी ने वैतालिक में राष्ट्रीय गीत और झंकार में रहस्यात्मक तथा आन्तरिक अनुभूति के चित्र अपने प्रबंध काव्यों में अंकित किए हैं। स्वदेश संगीत, मातृभूमि और मेरा राष्ट्र के प्रति आपकी प्रशस्तियाँ हैं। गुप्त जी ने इन गीतों की उच्छिन्न धारा को गति प्रदान की है। साकेत की उर्मिला गीतों में अपनी विरहानुभूतियों की अभिव्यक्ति करती है—'मुझे फूल मत मारो' 'काली-काली कोयल बोली होली-होली-होली' 'यही आता है इस मन में अब जो प्रियतम को पाऊँ' 'लाना-लाना तूली' [illegible] में छवि भूली' आदि गीतों में गुप्त जी की कोमल भावना [illegible] है। यशोधरा के—

१—अब कठोर हो बज्रादपि ओ कुसमादपि सुकुमारी।
आर्य पुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी॥
२—सखि वे मुझसे कहकर जाते।
३—क्या देकर मैं तुमको लूँगी आदि शीर्षक गीतों में यशोधरा का करुणोज्वल रूप चित्रित हुआ है। गीत तत्व के कारण ही यशोधरा साकेत से अधिक रसवती हो गयी है। कुणाल-गीत हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्यों में से है। इस काव्य की कथा जितनी करुण और मार्मिक है उतने ही उसके गीत भी हृदय-वेधक हैं।

गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति

पिछले पृष्ठों मे हमने बताया कि गुप्त जी एक सम्पन्न वैश्य घराने में अवतरित हुए थे। उनके पिता बड़े रामभक्त एवं कवि थे। ऐसे वातावरण का गुप्तजी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वह भी अपने पिता की भाँति कविता करने लगे। समय बीतने पर उनमें काव्य-प्रतिभा का प्रकाश हुआ।

द्विवेदीजी सन् १६०३ में 'सरस्वती' नामक पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हुए। उसी समय अनेकों नवीन कवि साहित्य-क्षेत्र मे उतरे। मैथिलीशरण गुप्त की प्रतिभा द्विवेदी जी की सहायता से द्विगुणित हो गई।

गुप्त जी की प्रारम्भिक कविताएँ जो वे द्विवेदी जी के पास सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजते थे, वे तुकबन्दी-मात्र ही होती थीं। सम्भवतः आधुनिक सम्पादक तो ऐसी तुकबन्दियों को देखना भी पसन्द न करेंगे। यह ठीक भी है। जब किसी सम्पादक के पास अनेकों श्रेष्ठ रचनाएँ होंगी तो वह क्यों ऐसी तुकबंदियों को देखेगा? किन्तु द्विवेदी जी आजकल के सम्पादकों के भाँति न थे। उनका उद्देश्य केवल कविताओं को छापना ही न था। एकमात्र उद्देश्य था प्रतिभा का पता लगाना और तुकबंदियों को ठीक कर उन्हें

महत्त्वशाली बनाना । गुप्त जी की जो कृतियाँ प्रकाशनार्थ द्विवेदी जी के पास जाती थे उनमें आवश्यक संशोधन करके ही पत्रिका में स्थान देते थे, कभी-कभी गुप्त जी का उत्साह बढ़ाने के लिए वे उन्हें प्रशंसा पत्र भी लिखते रहते थे। इस प्रकार के पथ-प्रदर्शन से गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति में बड़ी वृद्धि हुई ।

गुप्त जी की प्रारम्भिक कविताएँ जो सरस्वती में प्रकाशित हुई थी वे उन्हीं वृत्तों से सम्बन्धित थी जो द्विवेदी जी द्वारा सरस्वती में प्रकाशित किए जाते थे । अनुमानतः दस वर्ष तक इसी प्रकार की रचनाएँ वे सरस्वती में छपाते रहे । इनको उनकी साहित्यिक प्रगति का महत्व समझने के लिए पढ़ना आवश्यक है, वैसे उनका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है, क्योंकि वे सब तुकान्त मात्र हैं ।

गुप्तजी सन् १६०३ से अच्छी कविता करने लगे थे । हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में इस समय वे बड़ी धूम-धाम से आए । उनका एक पद्यांश उदाहरणार्थ देखिये, जोकि तत्कालीन पत्रिका सरस्वती में सन् १६०६ में प्रकाशित हुआ था ।

> लोहीं विद्रुम पद्मराग सम है बिम्बोष्ठ शोभा भली ।
> श्री-संयुक्त सुवर्ण यह यों है ठीक रत्नावली ।
> राजा के सुन बैन यों वह हुई रोमांचिता स्तंभिता,
> लज्जा संकुचित प्रकम्पित तथा स्वेदाम्बु संशोभिता,

उपर्युक्त काव्य से गुप्तजी की प्रारम्भिक शैली के विषय में जानकारी प्राप्त होती है । इसके पश्चात् उन्होंने संस्कृत वृत्तों को त्यागकर भाषा को सरल, सुबोध एवं सरस रूप दिया ।

'रंग में भंग' गुप्त जी का पहला काव्य था, जो सन् १६१० में प्रकाशित हुआ । नवीन शैली का यह काव्य उनके व्यक्तित्व की छाप से उनका ही बन गया । काव्य का प्रारम्भिक अंश देखिए:—

> लोक शिक्षा के लिए अवतार था जिसने लिया ।
> निर्विकार निरीह होकर नर-सदृश कौतुक किया ।

राम-नाम ललाम जिसका सर्व मङ्गल धाम है।
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा-सहित प्रणाम है।

मंगलाचरण की ऐसी वैष्णव प्रवृत्ति का निर्वाह अब तक गुप्तजी अपने काव्य के आरम्भ में करते आ रहे हैं। उन्होंने अपने धर्म-सम्बन्धी काव्यों में भी राम की आराधना की है।

"हाड़ा कुंभ चित्तौड़ में बूँदी के कल्पित दुर्ग की रक्षा हेतु मेवाड़ के राणा की एक विशाल सेना से टक्कर लेते हुए पृथ्वी की शरण लेते हैं," यह एक ऐतिहासिक गाथा है। इस प्रसिद्ध कथा को 'रंग में भंग' नाम देकर गुप्त जी ने काव्य के रूप में चित्रित किया है। मृत्यु को कंठ लगाने के लिए, आत्म-विश्वास के साथ हाड़ा कुम्भ कहता है:—

तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला मैं मान के!
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-मूर्ति को जड़ जान के!
भ्रान्त जन उसको भले ही जड़ कहें अज्ञान से।
देखते भगवान को श्रीमान उसमें ध्यान से।
है न कुछ चित्तौड़ यह बूँदी इसे अब मानिए।
मातृ-भूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिए।

राष्ट्र-प्रेम की भावना का वह अंकुर इन पंक्तियों में मिलता है— जिसने 'भारत-भारती' नामक काव्य के पश्चात् गुप्त जी को राष्ट्रीय कवि के उच्च पद पर आसीन किया।

उपर्युक्त ग्रन्थों के रचनाकाल के एक वर्ष पश्चात् सन् १६१० में 'जयद्रथ-वध' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमे प्रथम बार गुप्तजी के साहित्यिक उत्थान एवं मौलिकता के दर्शन होते हैं। भाषा, भाव, शैली, रस, अलंकार तथा कला की दृष्टि से यह एक सफल खण्ड काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। भाषा एवं भावों की सरलता एवं सरसता ने इस काव्य को जन-साधारण तक पहुँचने में योग दिया। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियाँ देखिए:—

'रहते हुए तुम-सा सहायक प्रण हुआ पूरा नहीं।
इससे मुझे है जान पड़ता भाग्य-बल ही सब कहीं।
जलकर अनल में दूसरा प्रण पालता हूँ मैं अभी।
'अच्युत! युधिष्ठिर आदि का अब भार है तुम पर सभी।'

उपर्युक्त पंक्तियों से कैसी सुन्दरता टपकती है। कैसा सरल एवं तीव्र वेग है भावों का। शैली कितनी प्रभावोत्पादिनी है।

गुप्तजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत भारती' ने सन् १९१२ में राष्ट्र को सुप्तावस्था से छुड़ाने के लिए साहित्य के विस्तीर्ण क्षेत्र में अपना शंख-नाद किया। इस पुस्तक ने गुप्त जी को राष्ट्र-कवि के अमर सिंहासन पर ला बिठाया। भाषा-शैली, भाव तथा कला आदि सभी दृष्टिकोणों से गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति के दर्शन इस पुस्तक में होते हैं। किसी कवि ने इस युग में इतनी ओजपूर्ण शैली में लिखकर राष्ट्र को सजग कराने का प्रयास न किया। हिन्दू समाज के दोषों को देखकर गुप्त जी ने नेत्रों के डोरे अरुण करके लोगों को ललकारना आरम्भ किया।

उदाहरणार्थ—

"हे ब्राह्मणो! फिर पूर्वजों के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्म-गौरव, धर्म के ध्यानी बनो।
कर दो चकित फिर विश्व को अपने पवित्र प्रकाश से।
मिट जाय फिर सब तम तुम्हारे देश के आकाश से।
क्षत्रियो! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेंट दो।
वैश्यो! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का।
सब धन विदेशी हर रहे हैं, पार है क्या क्लेश का।"

'भारत-भारती' के पश्चात् 'पद्य प्रबन्ध', 'तिलोत्तमा', 'चन्द्रहास', 'किसान', 'वैतालिक', 'शकुन्तला', 'पत्रावली' आदि ग्रन्थ क्रमशः सन् १९१२, १९१५, १९१६, १९१७, १९१९, १९२१ तथा १९२१

में प्रकाशित हुए। परन्तु 'भारत भारती' या स्वर इतना मधुर था कि उसके आगे जनता ने और किसी की ओर ध्यान ही न दिया। सब ग्रन्थों में किसी विशेष प्रगति के दर्शन भी नहीं होते। हाँ, साहित्य-भांडार के रत्नों की वृद्धि गुप्तजी ने इनके द्वारा अवश्य की।

गुप्त जी का एक छोटा-सा खंड-काव्य पंचवटी सन् १६२५ में, साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। इस लघु काव्य की सरस भाषा एवं कला ने कथा-प्रेमियों का हृदय अपनी ओर आकर्षित किया। इस काव्य में प्रकृति-वर्णन बड़ा ही सजीव है—

उसी समय पौ फटी पूर्व में, पलटा प्रकृति-नटी का रंग;
किरन-कंटकों से श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग।
कुछ-कुछ अरुण, सुनहली कुछ-कुछ, प्राची की अब भूषा थी,
पंचवटी की कुटी खोलकर खड़ी स्वयं क्या ऊषा थी।
अहा! अम्बरस्था ऊषा भी इतनी शुचि स्फूर्ति न थी,
अवनी की ऊषा सजीव थी, अम्बर की-सी मूर्ति न थी।

इस प्रकार का जीता-जागता प्रकृति-वर्णन क्या पूर्ववर्ती काव्यों में उपलब्ध हो सकता है? सच पूछा जाय तो गुप्तजी की यह रचना भी उनकी साहित्यिक प्रगति की साक्षी दे रही है। 'अनघ' तथा 'स्वदेश-संगीत' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए, जिसमें गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति की नवीन गति दीख पड़ती है।

सन् १६२५ के पश्चात् गुप्त जी ने अपने काव्य को नवीन साँचे में ढाला। परिणाम-स्वरूप धारा की गति में तीव्रता आई। अब वे हिन्दू धर्म के उन्नायक बन कर कविता द्वारा राष्ट्र को चेताने के लिए सन्नद्ध हुए। उन्होंने हिन्दुत्व और राष्ट्र-प्रेम को एक मान कर हिन्दुओं की सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करने के लिए अपनी वाणी का सदुपयोग किया। ऐतिहासिक कथाओं को उन्होंने नवीन ढंग से सुसज्जित किया। त्रिपथगा, वन-वैभव, शील, सैरन्ध्री आदि काव्य जो सन् १६२८ में प्रकाशित हुए—इसी परिश्रम का फल है।

महाभारत से सम्बन्धित कथाओं को वन-वैभव, शक्ति आदि नाम मिला। सिक्ख गुरुओं के धर्म की रक्षार्थ गुरुकुल की रचना की गई। विकट भट में उन्होंने राजपूत गाथा को चित्रित कर इतिहास के पृष्ठों को स्वर्णों से मढ़ा। परन्तु इन सब रचनाओं में गुप्त जी की विशेष प्रगति की बात नहीं सोचनी चाहिए। वास्तव में इन रचनाओं में गुप्त जी की कला के उस अंकुर ने विकास पाया, जो साकेत में आकर कला का प्रचारक बना। सन् १६२६ में एक रहस्यवादी कविताओं का संग्रह 'झंकार' नाम से प्रकाशित हुआ। इस रचना में भी गुप्त जी की साहित्यिक प्रगति के कुछ चिन्ह अन्तर्गत होते हैं।

सन् १६३२ में गुप्त जी ने एक अनुपम कृति हिन्दी-साहित्य को भेंट की थी। यह कृति थी साकेत; जिसने गुप्तजी को महाकाव्यकारों की कोटि में ला बिठाया। नवीन युग की नवीन साँचे में ढली हुई यह गाथा मौलिकता तथा उच्च कोटि की कल्पना लिए हुए है। अलंकारों की अनूठी गति, अभिव्यंजना की मस्त चाल, भाषा का मधुरिमा और संवादों का आकर्षण इसमें देखते ही बन पड़ता है। कथानक पर आधुनिकता का रँग चढ़ाकर गुप्तजी ने इस काव्य की सुन्दरता को द्विगुणित कर दिया है। आधुनिक युग के इस दोष को कि खड़ी बोली में कोई महाकाव्य नहीं है, गुप्त जी ने दूर कर दिया। राम की कथा को मौलिकता के साथ चित्रित करने का प्रयास इस काव्य में हुआ है। अयोध्या में ही पूरी रामकथा समाप्त होती है। इसी कारण इसका नाम साकेत रक्खा गया है। पात्रों के चरित्रों में बहुत कुछ परिवर्तन करने से गुप्त जी ने युगों के सारे कलंक धो डाले हैं। उपेक्षिता उर्मिला का तो इसमें उद्धार ही हो गया है। ऐसा भासित होता है कि मानो उसी के कल्याणार्थ यह ग्रन्थ लिखा है। उर्मिला को प्रधानता देने की धुन में ग्रन्थ का महत्व कुछ कम हो गया है। कुछ भी हो, यह कहा जा सकता है कि

तत्कालीन सभी परिस्थितियों का प्रभाव इस ग्रन्थ पर लक्षित होता है। यह काव्य गुप्त जी की साहित्यिक प्रगति का साक्षात् प्रमाण है।

दूसरे वर्ष एक और कृति यशोधरा प्रकाश में आई। यह भी तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से न बच सकी। गान्धीवाद की स्पष्ट झलक गुप्त जी के इस काव्य में दीख पड़ती है। गुप्त जी का यह काव्य चम्पू काव्य की श्रेणी में आता है। इस पुस्तक में गुप्त जी ने वियोगिनी यशोधरा की करुण कहानी अंकित कर, बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति तक का वृतान्त दिया है। यह भी कवि की साहित्यिक प्रगति का एक चिह्न है।

क्रमशः १९३४-३६ और १९४० में गुप्तजी ने हिन्दी-साहित्य को मंगल-घट द्वापर, सिद्धराज तथा नहुष आदि छोटी-छोटी रचनाएँ भेंट की। इसके बाद भी गुप्त जी बराबर लिखते रहे। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य को अजित आदि रचनाएँ प्राप्त हुईं।

प्रारम्भ से लेकर अबतक गुप्त जी ने अपनी लेखनी को एक ही मार्ग पर चलाया है। उनका एक ही साहित्यिक ध्येय रहा है और उसी का उन्होंने अब तक अनुसरण किया है। उन्होंने समकालीन प्रभावों को ठुकराने का प्रयास नहीं किया है, वरन् उन सब में रस घोल कर, उन्हें अपना ही बना लिया है। यही कारण है कि वह रहस्यवाद तथा प्रगतिवाद के युगों में अपनी इतिवृत्तात्मक शैली को जीवित रखकर राष्ट्र-कवि तथा महाकवि पद को प्राप्त कर सके। यही सब उनकी साहित्यिक प्रगति की महत्ता है।

हिन्दी-साहित्य में गुप्तजी का स्थान—गुप्त जी कला जीवन के लिए मानते हैं। इसी लिए आपने समाज के हित के लिए साधना एवं मर्यादा का सन्देश दिया है। आपका महाकाव्य चिरन्तन आदर्श के साथ-साथ वर्तमान युग के आदर्श को भी प्रदान करता है। सन् १९१० से १९२० तक खड़ी बोली हिन्दी की भाषा और

शैली का सबसे सुन्दर रूप गुप्त जी की ही संस्कृत पदावली और भाषा-वैभव एवं पदावली की संगीतात्मकता से बड़ी प्रेरणा मिली है। सन् १९३६ में गीतवाद और छायावाद का सुन्दर समन्वय गुप्त जी ने कर दिया। इस प्रकार गुप्त जी खड़ी बोली हिन्दी के गगन-चुम्बी प्रासाद के अनगढ़ पत्थर के रूप में, नींव में लगे हुए काव्य-प्रासाद को दृढ़ता और स्थायित्व प्रदान कर रहे हैं। इस प्रासाद के निर्माण में जहाँ आपने कला पूर्ण चित्र विचित्र अलंकारों से रंजित काव्य-प्रासाद को सौंदर्य-पूर्ण बनाया है, वहाँ आपने इस कलाभवन में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक मूर्तियाँ भी स्थापित की हैं। राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला, यशोधरा, बुद्ध, शकुन्तला पाँडव, कुणाल, सिद्धराज आदि उसी प्रकार के चित्र हैं। गुप्त जी ने अपनी काव्य चित्रपटी पर युग विशाल भारत का बड़ा गौरव मूर्ति संभड उपस्थित किया है। आपने अपने कौशल के आधार पर नवीन मजधज के साथ वाणी पर राष्ट्र पताका उड़ाई है। वाणी की अनुपम छाया उनके ऊपर है। यह तथा उनकी कल्पना धन्य है।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गुप्त जी हिन्दी-साहित्याकाश के उदय-कालीन सूर्य तथा खड़ी बोली को गौरवान्वित करनेवाले कवि सम्राट् हैं।

यशोधरा लेखन का उद्देश्य

गुप्तजी ने साकेत महाकाव्य की रचना करने के पश्चात् यशोधरा लघु काव्य की रचना क्यों की? इस प्रश्न ने जन साधारण के हृदय-पटल पर एक प्रकार की मत-भेद की रेखाएँ अंकित कर दी हैं। पर प्रश्न इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि गुप्तजी की सभी रचनाएँ भावना, कला के लिए का अपवाद है। उनकी प्रत्येक रचना का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य है।

इस प्रश्न का समाधान करने से पूर्व किसी भी रचना के उद्देश्य की कसौटी पर विचारना आवश्यक है। उद्देश्य लेकर काव्य की रचना करनेवाले कवियों की किसी भी रचना का उद्देश्य निम्न बातों से पहचाना जा सकता है :—

१—कवि की भावना।
२—कवि के संस्कार।
३—कवि का चिन्तन।
४—कवि के विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव।

इन बातों पर मनन करने से पूर्व हमें गुप्तजी द्वारा काव्य के प्रारम्भ में लिखी गई भूमिका पर दृष्टिपात करना होगा। वे लिखते हैं—

"भाई सियारामशरण,

× × × ×। मेरी शक्ति पर विचार किए बिना ही ऐसे प्रश्न किया करते हो, कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है। तो कविता लो, गीत लो, नाटक और लो गद्य, पद्य, तुकान्त,अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं।"

इन पंक्तियों से ऐसा भासित होता है कि आपने यशोधरा की रचना अनुज के विभिन्न विषयों पर लेखनी चलाने के लिए किए गए हठ की पूर्ति के लिए की। गुप्त जी साहित्य-जगत् में कवि के ही रूप में प्रख्यात हैं, गद्यकार के रूप में नहीं। सम्भव हो सकता है कि गद्यकार के क्षेत्र में प्रवेश करने के अभिप्राय की अनिच्छा से उन्होंने यशोधरा की रचना की हो, जो चम्पू मात्र बनकर रह गई।

परन्तु जब हम भूमिका से आगे बढ़ते हैं, तो काव्य की वास्तविक आत्मा के दर्शन होते हैं। गुप्तजी लिखते हैं—

भगवान् बुद्ध और उनके अमृत तत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो-चार आँसू ही तुम्हें इसमें मिल जायें तो बहुत

शैली का सबसे सुन्दर रूप गुप्त जी की ही संस्कृत पदावली और भाषा-वैभव एवं पदावली की संगीतात्मकता से बड़ी प्रेरणा मिली है। सन् १९३६ में गीतवाद और छायावाद का सुन्दर समन्वय गुप्त जी ने कर दिया। इस प्रकार गुप्त जी खड़ी बोली हिन्दी के गगन-चुम्बी प्रासाद के अनगढ़ पत्थर के रूप में, नींव में लगे हुए काव्य-प्रासाद को दृढ़ता और स्थायित्व प्रदान कर रहे हैं। इस प्रासाद के निर्माण में जहाँ आपने कला पूर्ण चित्र विचित्र अलंकारों से रंजित काव्य-प्रासाद को सौंदर्य-पूर्ण बनाया है, वहाँ आपने इस कलाभवन में ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक मूर्तियाँ भी स्थापित की हैं। राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला, यशोधरा, बुद्ध, शकुन्तला पाँडव, कुणाल, सिद्धराज आदि उसी प्रकार के चित्र हैं। गुप्त जी ने अपनी काव्य चित्रपटी पर युग विशाल भारत का बड़ा गौरव मूर्ति संग्रह उपस्थित किया है। आपने अपने कौशल के आधार पर नवीन सजधज के साथ वाणी पर राष्ट्र पताका उड़ाई है। वाणी की अनुपम छाया उनके ऊपर है। वह तथा उनकी कल्पना धन्य है।

इस प्रकार संक्षेप में हम कह सकते हैं कि गुप्त जी हिन्दी-साहित्याकाश के उदय-कालीन सूर्य तथा खड़ी बोली को गौरान्वित करनेवाले कवि सम्राट् हैं।

यशोधरा लेखन का उद्देश्य

गुप्तजी ने साकेत महाकाव्य की रचना करने के पश्चात् यशोधरा चम्पू काव्य की रचना क्यों की? इस प्रश्न ने जन-साधारण के हृदय-पटल पर एक प्रकार की मतभेद की रेखाएँ अंकित कर दी हैं। यह प्रश्न इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि गुप्तजी की सभी रचनाएँ "कला, कला के लिए का अपवाद है। उनकी प्रत्येक रचना का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य है।

इस प्रश्न का समाधान करने से पूर्व किसी भी रचना के उद्देश्य की कसौटी पर विचारना आवश्यक है। उद्देश्य लेकर काव्य की रचना करनेवाले कवियों की किसी भी रचना का उद्देश्य निम्न बातों से पहचाना जा सकता है :—

१—कवि की भावना।

२—कवि के संस्कार।

३—कवि का चिन्तन।

४—कवि के विचारों पर तत्कालीन परिस्थितियों का प्रभाव।

इन बातों पर मनन करने से पूर्व हमें गुप्तजी द्वारा काव्य के प्रारम्भ में लिखी गई भूमिका पर दृष्टिपात करना होगा। वे लिखते हैं—

"भाई सियारामशरण,

× × × ×। मेरी शक्ति पर विचार किए बिना ही ऐसे प्रश्न किया करते हो, कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है। तो कविता लो, गीत लो, नाटक और लो गद्य, पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं।"

इन पंक्तियों से ऐसा भासित होता है कि आपने यशोधरा की रचना अनुज के विभिन्न विषयों पर लेखनी चलाने के लिए किए गए हठ की पूर्ति के लिए की। गुप्त जी साहित्य-जगत् में कवि के ही रूप में प्रख्यात हैं, गद्यकार के रूप में नहीं। सम्भव हो सकता है कि गद्यकार के क्षेत्र में प्रवेश करने के अभिप्राय की अनिच्छा से उन्होंने यशोधरा की रचना की हो, जो चम्पू मात्र बनकर रह गई।

परन्तु जब हम भूमिका से आगे बढ़ते हैं, तो काव्य की वास्तविक आत्मा के दर्शन होते हैं। गुप्तजी लिखते हैं—

भगवान बुद्ध और उनके अमृत तत्व की चर्चा तो दूर की बात

समझना और, उनका श्रेय भी साकेत की उर्मिला देवी को है, जिन्होंने कृपा-पूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया।

इन पंक्तियों में हमें कवि की भावना तथा यशोधरा की रचना का उद्देश ज्ञात होता है। गुप्त जी बड़े भावुक कवि हैं। साकेत की रचना करते समय उनकी भावुकता की तृप्ति 'उर्मिला' के आँसुओं से नहीं हुई, मानों उसी अतृप्ति की पूर्ति करना यशोधरा लेखन का उद्देश्य थी। उनकी भावना पर मानों साकेत की उर्मिला ने ऐसा प्रभाव डाला कि उनको यशोधरा लिखने के लिए विवश होना पड़ा। राजप्रासाद का उपवन ही जिसके लिए वियोग-स्थल बन गया हो तो उसके अश्रुओं की क्या सीमा ! राज-प्रासाद की हरएक वस्तु, अतीत के सुखों की स्मृति, प्रियतम की याद, वियोगाग्नि को कितनी प्रबल कर देती होगी, इसकी कल्पना हेतु मानों गुप्त जी की कल्पना भी द्रवित होकर कविता बन गई।

उपर्युक्त चार बातें यशोधरा की रचना का उद्देश्य समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती हैं। सभी बातों पर मनन करने के पश्चात् हमें निम्न चार बातें यशोधरा की रचना का महा उद्देश्य जान पड़ती हैं—

१—वैष्णव-भावना।

२—उपेक्षिता का सम्मान।

३—स्त्री-जाति की महत्ता का प्रतिपादन।

४—राजनीतिक गान्धीवाद और साहित्यिक रहस्यवाद का प्रभाव।

अब हम प्रत्येक का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे। पहली बात को ही देखिये। यशोधरा के मुख-पृष्ठ की निम्नपंक्तियाँ—

अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी॥

जब हम देखते हैं तो ऐसा भासित होता है कि वैष्णव-धर्म के करुणा-मूलक संस्कार इन शब्दों में मुखरित हो रहे हैं। हमें सहसा—

"वैष्णव जन तो तेरो कहिए,
जे पीर पराई जाणे रे।"

यह शब्द स्मरण हो जाते हैं। इसे देख कर ऐसा भासित होता है, मानों पराई पीर को जानने के लिए, मोक्ष की खोज में बिना कुछ कहे-सुने प्रासाद त्यागकर चले जानेवाले सिद्धार्थ के वियोग की विरहाग्नि में जलने वाली गोपा की अन्तर्व्यथा को काव्य के रूप में साकार करना ही कवि का उद्देश्य रहा हो। "मेरी वैष्णव-भावना ने तुलसी दल देकर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रक्खा है" कवि के इन शब्दों से भी इसका स्पष्टीकरण हो रहा है।

आचार्य द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से, उपेक्षिता उर्मिला को सम्मानित करने के लिए गुप्त जी ने साकेत की रचना की। इसकी रचना करते समय उन्हें यशोधरा की याद हो आई। प्रतीत होता, है, यशोधरा का सम्मान करना भी उनकी कला का उद्देश्य बन गया। फलस्वरूप यशोधरा काव्य रूप में एक आदर्श रचना बन कर साहित्य-प्रेमियों के घर में आयी। भूमिका से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

"हाय! यहाँ भी वही उदासीनता। अमिताभ की आभा में ही उनके भक्तों की आँखें चौंधिया गई और उन्होंने इधर देखकर भी नहीं देखा। सुगत का गीत तो देश-विदेश के कितने ही कवि-कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता देखकर मुझे शुद्धोदन के शब्दों में यही कहना पड़ता है कि 'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।'

उपर्युक्त आधारों से स्पष्ट है कि उपेक्षिता गोपा का सम्मान

परन्तु क्या इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त स्त्री जाति के महत्व का विश्लेषण करना 'यशोधरा' काव्य का उद्देश्य नहीं था ? अवश्य था, और उससे भी कहीं अधिक था जितना उपेक्षिता का सम्मान और वैष्णवता की भावना का स्पष्टीकरण। गुप्त जी ने यशोधरा की रचना कर इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहा कि नारी के कारण ही नर को महत्व प्राप्त होता है। यदि वह घर पर बैठकर त्याग न करे, पुरुष की शुभ कामनाएँ ईश्वर से न मनाये, तो नर की क्या शक्ति जो अपने उद्देश्य में सफल हो। पुरुष की सफलता के लिए नारी कितना त्याग कर सकती है, यही दिखाना यशोधरा का उद्देश्य है। सिद्धार्थ बन की ओर प्रस्थान करते हैं। यशोधरा सोचती है कि वे मुझसे कहकर गए होते। उसे प्रतिक्षण यही चिन्ता व्यथा पहुँचाती है, किन्तु बाद में उसकी सारी चिन्ता दूर हो जाती है, क्यों कि वह उनके (गौतम) उद्देश्य को महत्व देती है और सब प्रकार की व्यथाएँ सहने को तत्पर हो जाती है। देखिए उसका त्याग—

> बाधा' तो यही है, मुझे बाधा नहीं कोई भी।
> विघ्न भी यही है, जहाँ जाने से जगत में,
> कोई मुझे रोक नहीं सकता है—धर्म से
> फिर भी जहाँ मैं, आप इच्छा रहते हुए
> जाने नहीं पाती, यदि पाती तो कभी यहां
> बैठी रहती मैं ? छानं डालती धरती को।
> सिंहनी-सी काननों में, योगिनी सी शैलों में,
> सफरी-सी जल में, विहंगिनी-सी व्योम में,
> जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं।

प्रश्न उठ सकता है कि इतनी शक्ति रखनेवाली यशोधरा विरहाग्नि में क्या जलती रही ? क्यों इसलिए कि उसमें शक्ति नहीं ? नहीं, शक्ति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ऊपर की पंक्तियों में,

उसमें शक्ति ही शक्ति दीख पड़ती है, किन्तु फिर भी वह विरह-ज्वाला में क्यों जलती है ? क्या इसलिए कि वह अपने प्रियतम को अपने उद्देश्य में सफल देखना चाहती है। हां, और इसी कारण वह बड़ा से बड़ा त्याग करती है। वह नारी के त्याग का महत्व बताती हुई कहती है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में—
क्षात्र धर्म के नाते ।

उसे इस बात का दुख अवश्य है कि गौतम उससे बिना कुछ कहे चले गये। वह पुरुष मार्ग की बाधा न बनकर यह स्पष्ट कर देना चाहती थी कि नारी पुरुष मार्ग को शक्ति और उत्साह का स्रोत है। इस प्रकार गुप्त जी ने स्त्री-जाति के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए यशोधरा की रचना की, ऐसा प्रतीत होता है। वह समय जब कि यशोधरा की रचना की गई थी, स्त्री-स्वातंत्र्य के आन्दोलन की जागृति का युग था। राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर स्त्री की महत्ता का प्रदर्शन करने के लिए यशोधरा रची गई, यह स्पष्ट है।

गांधीवाद तथा रहस्यवाद की आँधी भी इस काव्य की रचना का उद्देश्य बनी। अहिंसा का आन्दोलन उस समय प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा था। महात्मा बुद्ध भारत में अहिंसा के प्रवर्तक माने जाते हैं। अतः इस अहिंसा-आन्दोलन को जीवित रखने के लिए यशोधरा लिखी गई। काव्य-शैली को देखकर पता चलता है कि रहस्यवाद से प्रभावित होकर गुप्तजी ने इस काव्य की रचना के लिए लेखनी चलाई। रहस्यवाद में आत्मा प्रियतम के वियोग में छटपटाती है, उसी प्रकार यशोधरा अपने प्रियतम के

है कि रहस्यवाद के प्रभाव ने गुप्त जी से यशोधरा का विषय ढूँढवा कर 'यशोधरा' काव्य लिखाया। कथा इतिवृत्तात्मकता के कारण आधार बनी।

तात्पर्य यह है कि यशोधरा सोद्देश्य लिखी गई और कवि की सफलता का प्रतीक बनी।

यशोधरा काव्य पर एक दृष्टि

आचार्यों ने काव्य के तीन भेद माने हैं—

१—प्रबन्ध-काव्य।

२—मुक्तक काव्य।

३—चम्पू काव्य।

१. प्रबन्ध-काव्य—यह काव्य होता है, जिसमें किसी कथा को लेकर कविता की धारा प्रवाहित की जाती है तथा उसका आदि, मध्य और अवसान धारा वाहिकता से निभाया जाता है।

२. मुक्तक-काव्य—यह वह काव्य होता है, जो स्फुट विषयों पर लिखा जाता है तथा जिसका पूर्वोत्तर कोई सम्बन्ध नहीं होता।

३. चम्पू-काव्य—यह काव्य का तीसरा भेद होता है, जो कि विषय के अनुसार नहीं, काव्य कलेवर के अनुसार होता है। यह चम्पू-काव्य कहलाता है, जो दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य की भेद सरणि में आता है।

प्रबन्ध-काव्य के आचार्यों ने तीन भेद किए हैं—

१—महा काव्य।

२—खण्ड-काव्य।

३—एकार्थ काव्य।

१. महाकाव्य—वह काव्य है, जिसमें किसी बड़ी कथा किसी इतिहास-प्रसिद्ध या पुराण विदित व्यक्तियों की जीवन-गाथा को

लेकर चलती है तथा अपना विशद स्वरूप प्रस्तुत करती हुई जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श कर सम्पर्क में आनेवाली समस्त वस्तुओं या व्यक्तियों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करती है, और इसी कारण वह खण्डों में विभाजित भी होती है। उदाहरण के लिए राम-चरित मानस।

२. खण्ड काव्य—वह काव्य होता है, जिसमें किसी ऐतिहासिक व पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तित्व का एक खण्ड-दृश्य, महाकाव्य की शैली पर प्रस्तुत किया जाता है। जैसे जयद्रथ-वध।

३. एकार्थ काव्य—ऐसे प्रबन्ध काव्य होते हैं जो महाकाव्य की कोटि तक नहीं पहुँच पाते, किन्तु अपने विशाल वर्णनों के कारण खण्ड-काव्य से ऊँचे उठ जाते हैं, वे एकार्थ काव्य होते हैं। जैसे प्रिय-प्रवास।

मुक्तक काव्य के भी तीन भेद हैं—

१. नीति-मुक्तक।

२. स्फुट-मुक्तक।

३. गीति मुक्तक। या गीत काव्य।

१. नीति मुक्तक—वे काव्य कहलाते हैं, जिसके एक छन्द में एक ही नीति की बातें आती हैं। प्राचीन कवि रहीम, विहारी आदि के दोहे इसी के अन्तर्गत आते हैं।

२. स्फुट मुक्तक—यह ऐसे काव्य होते हैं, जिनमें दो चार छन्दों में किसी भावना या पदार्थ का वर्णन किया जाता है। विद्यापति आदि का काव्य इस कोटि में रखा जा सकता है।

३. गीत-काव्य—इस काव्य में हृदय की क्षणिक भावनाओं को व्यक्त किया जाता है।

यशोधरा पर मनन करने से पूर्व काव्य के यह सभी भेद हमारे सामने आते हैं। कुछ विद्वानों ने यशोधरा-काव्य को महाकाव्य की कोटि में रखा है। [illegible]

है या नहीं। ऊपर जो महाकाव्य की संक्षिप्त कसौटी दी गई है, उसके आधार पर इसे महाकाव्य कहना मूर्खता का द्योतक है। यह ग्रन्थ महाकाव्य की कसौटी पर खरा नहीं बैठता। हाँ, एक-दो पंक्तियाँ उसमें ऐसी अवश्य हैं, जो महाकाव्य के लक्षण उसमें प्रकट करती हैं। पर क्या एक दो पंक्तियों से उसे महाकाव्य कहना उचित होगा ? नहीं ! कदापि नहीं। न तो उसकी कथा ही महाकाव्य की शैली पर है और न अन्य कोई ही महाकाव्य का लक्षण उसमें विद्यमान है। गुप्त जी का साकेत भी यदि ठीक कहा जावे तो महाकाव्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतरता तो फिर यशोधरा की बात ही क्या ?

एकार्थ काव्य भी यशोधरा नहीं। क्योंकि एकार्थ काव्य तभी हो सकता है, जब कि उसमें महाकाव्य के कुछ लक्षण पाए जाएँ।

खण्ड काव्य की कसौटी पर रख कर जब हम यशोधरा को परख करते हैं तो यह बात खटकती है कि उसमें कथा का विशेष प्रवाह नहीं है। भगवान् बुद्ध का वन-गमन, योग साधना आदि का कोई प्रसंग उसमें नहीं है। उनके सम्पर्क में आनेवाली प्रकृति भी चित्रित नहीं की गई है। कथा का कोई खण्ड इसमें उसमें चित्रित नहीं किया गया है। यदि उसमें आरम्भ से अन्त तक कुछ मिलता है तो यशोधरा के भावों का विस्तृत अंकन बीच में आया हुआ नाटक भी उसे खण्ड काव्य के निकट नहीं पहुँचाता। मुझे तो उसे खण्ड काव्य कहते हुए संकोच होता है।

नीति की उसमें मुक्त छन्दों में चर्चा नहीं, कथा-प्रवाह भी छिपा-छिपा चलता है। अतः नीति-मुक्तक काव्य भी नहीं कहा जा सकता है, विभिन्न विषयों पर उसमें स्फुट काव्य भी नहीं लिखा गया है। जिससे वह स्फुट मुक्तक भी नहीं कहा जा सकता।

शैली की प्रधानता को देखकर और वर्णित विषय पर ध्यान देकर हम उसे गीत काव्य भी नहीं कह सकते हैं। यशोधरा के

हृदयोद्‌गारों का गीतों में अंकन हो यद्यपि अपनी प्रधानता रखते हैं तथापि कथा-सूत्र और नाटकोश उसे गीत काव्य से बिल्कुल दूर हटा लेता है।

यशोधरा का काव्य-भेद गुप्तजी की भूमिका से स्पष्ट हो जाता है—

"लो कविता, लो गीत, लो नाटक और लो गद्य-पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ परन्तु वास्तव में कुछ भी नहीं।"

यहाँ 'कुछ भी नहीं' अंश ध्यान देने योग्य है। जो काव्य, काव्य होते हुए प्रबन्ध काव्य नहीं, गीत युक्त होते हुए गीत-मुक्तक नहीं, संवाद युक्त होते हुए, नाटक गद्य होते हुए गद्य काव्य नहीं—जो दृश्य श्रव्य काव्य नहीं, वह अन्त में है क्या? वह है वास्तव में चम्पू काव्य। सारांश यह है कि यशोधरा एक चम्पू-काव्य है। उसमें महाकाव्य, गीत काव्य, तथा खण्ड-काव्य की आत्मा डालना, मूर्खता नहीं तो क्या है!

नारी

नारी—नारी संसार की सबसे महत्वपूर्ण परन्तु अपेक्षित अंग है। नारी में मानव-कल्याण, सहानुभूति, भावोद्‌भाविनी शक्ति तथा मानवीय शक्तियों के विकास-उद्‌गम एवं प्रथम-स्थान व्यापक रूप से सन्निहित रहता है। उसमें उमा-रमा और सरस्वती का निवास रहता है। वह विश्वात्मा की कोमल तथा मधुर कल्पना है। उसका मस्तिष्क है। नारी तन्तु-जाल केतु है, जो मानव-देह पर केन्द्रित शासन के समान अधिकार किए हुए हैं। इस लिए तो वह विश्व का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मानव मस्तिष्क है, हृदय नहीं।

उसका मर्म-स्थल वहाँ व्याप्त है, जहाँ वह पतित, अबला एवं मुखापेक्षी है, जहाँ वह विश्व के मानव के लिए उसकी विडम्बना और अहंकार के लिए [illegible]

उसका मातृत्व है। रोम-रोम में व्याप्त मधुर एवं अस्पष्ट उसका गौरव है। मातृत्व की भावना और वेदना इन दो तारों द्वारा उसका जीवन प्रवाहित होता है। पुरुष-विहीना नारी अबला और एकाङ्गी है। वह पुरुष की पूर्ति है। उसके अभाव में मानव-जीवन नैया खेने में असमर्थ है। उसके सहयोग में वह विश्व-विजय प्राप्त करता है। नारी-विहीन मानव जलरहित प्रवाह है। रसहीन मधुरता है। नारी मानव के लिए इस अथाह असीमित भवाम्बुनिधि में जहाँ उसे पल-पल कठोरता, अन्याय, पराजय, हीनता, कुप्रवृत्ति, कटुता, विरसता तथा उदासीनता से सामना करना पड़ता है—जहाज है। नारी प्रकाश स्तम्भ का स्थान ग्रहण करती है। भ्रम, अन्धकार से उसकी रक्षा कर उसकी साधनाओं के लक्ष्य की ओर, उसके ध्यान को केन्द्रित कर उसके प्रथम प्रदर्शन में सहायक बनती है। अतः मातृ जाति को मनसा वाचा कर्मणा दयामूर्ति मानना श्रेयस्कर है और हीन समझना उसका अपमान है। यशोधरा में नारीजाति की इस महत्ता को स्वयं बुद्ध ने स्पष्ट किया है। वह नारीजाति का स्पष्ट व्यापक आभार स्वीकार कर कहते हैं—

> दीन न हो गोपे सुनो, हीन नहीं नारी कभी।
> भूत-दया-मूर्ति वह मन से शरीर से।
> क्षीण हुआ वन में, क्षुधा से मैं विशेष जब,
> मुझको बचाया मातृजाति ने ही खीर से॥
> आया जब मार मुझे मारने को बार-बार,
> अप्सरा अनीकिनी सजाये हमें हीर से।

यशोधरा नारी-जाति की दो महान् सर्वोत्कृष्ट प्रवृत्तियों का हृदय-स्थित, दो अत्यन्त सूक्ष्म परन्तु अमूल्य अनायास तारों का सतत् बहनेवाले रस-स्रोतों का प्रतिबिम्बित करती हुई दृष्टिगत होती है। वे दो स्रोत हैं,—'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' अर्थात् मातृत्व की भावना और वेदना है। इन्हीं दो सूत्रों के ऊपर यशोधरा

का जीवन प्रवाहित होता रहता है। गोपा (यशोधरा) की कथा समस्त नारी-जाति का जीवन इन्हीं दो तारों में गतिमान है। इन्हीं दो महान् भावनाओं के कारण नारी नारी है। गुप्तजी इस तथ्य से भली भाँति अवगत हैं। यही कारण है कि उन्होंने दो ही पंक्तियों में आदर्श स्थापित कर दिया है। यथा—

अबला—जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

समस्त काव्य इसी का विकास विकीर्ण एवं आधेय है। गुप्तजी काहृदय काव्य के कुछ कोमल नारी चित्रों की निर्मम उपेक्षा से विचलित हो उठा और उपेक्षिता उर्मिला तथा कैकेयी के चरित्रों को अंकित करने के पश्चात् हीना, दीना, खिन्ना एवं मलीना गोपा की कथा कहना परम धर्म समझा।

यशोधरा की कथा

यशोधरा की कथा भारत की पुरानी कहानी है। भगवान् बुद्ध की जीवनी ही यशोधरा की कथा है। कवि ने इस गाथा को महाकाव्य के रूप में अंकित करने का प्रयास नहीं किया है। शैली की दृष्टि से उसका रूप गद्य-पद्य एवं काव्य चम्पू का है। कवि ने कथा की अभिव्यक्ति गीतों के रूप में की है। सूर-सागर के समान इस ग्रन्थ की शैली भी गीतात्मक प्रबन्ध-काव्य में है। बुद्ध जी के महाभिनिष्क्रमण की थोड़ी सी कथा में चाहे प्रबन्धात्मकता भले ही रही हो, परन्तु आगे चलकर उसकी साधना और गोपा के वियोग को केवल गीतों द्वारा ही भलीभाँति अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसमें गीतात्मकता की ओर विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है। चार सर्ग तक गीतों की रचना करके कवि यशोधरा

उसका मातृत्व है। रोम-रोम में व्याप्त मधुर एवं अस्पष्ट उसका गौरव है। मातृत्व की भावना और वेदना इन दो तारों द्वारा उसका जीवन प्रवाहित होता है। पुरुष-विहीना नारी अवला और एकाङ्गी है। वह पुरुष की पूर्ति है। उसके अभाव में मानव-जीवन नैया खेने में असमर्थ है। उसके सहयोग में वह विश्व-विजय प्राप्त करता है। नारी-विहीन मानव जलरहित प्रवाह है। रसहीन मधुरता है। नारी मानव के लिए इस अथाह असीमित भवाम्बुनिधि में जहाँ उसे पल-पल कठोरता, अन्याय, पराजय, हीनता, कुमवृत्ति, कटुता, विरसता तथा उदासीनता से सामना करना पड़ता है—जहाज है। नारी प्रकाश स्तम्भ का स्थान ग्रहण करती है। भ्रम, अन्धकार से उसकी रक्षा कर उसकी साधनाओं के लक्ष्य की ओर, उसके ध्यान को केन्द्रित कर उसके प्रथम प्रदर्शन में सहायक बनती है। अतः मातृ जाति को मनसा वाचा कर्मणा दयामूर्ति मानना श्रेयस्कर है और हीन समझना उसका अपमान है। यशोधरा में नारीजाति की इस महत्ता को स्वयं बुद्ध ने स्पष्ट किया है। वह नारीजाति का स्पष्ट व्यापक आभार स्वीकार कर कहते हैं—

> दीन न हो गोपे सुनो, हीन नहीं नारी कभी।
> भूत-दया-मूर्त्ति वह मन से शरीर से।
> क्षीण हुआ वन में, क्षुधा से मैं विशेष जब,
> मुझको बचाया मातृ-जाति ने ही खीर से॥
> आया जब मार मुझे मारने को बार-बार,
> अप्सरा अनीकिनी सजाये हमें हीर से।

यशोधरा नारी-जाति की दो महान् सर्वोत्कृष्ट प्रवृत्तियों का हृदय-स्थित, दो अत्यन्त सूक्ष्म परन्तु अमूल्य अनाशवान् तारों का सतत् बहनेवाले रस-स्रोतों का प्रतिनिधित्व करती हुई दृष्टिगत होती है। वे दो स्रोत हैं,—'आँचल में है दूध और आँखों में पानी' अर्थात् मातृत्व की भावना और वेदना है। इन्हीं दो सूत्रों के ऊपर यशोधरा

का जीवन प्रवाहित होता रहता है। गोपा (यशोधरा) ही क्या समस्त नारी-जाति का जीवन इन्हीं दो तारों में गतिमान है। इन्हीं दो महान् भावनाओं के कारण नारी नारी है। गुप्तजी इस तथ्य से भली भाँति अवगत हैं। यही कारण है कि उन्होंने दो ही पंक्तियों में आदर्श स्थापित कर दिया है। यथा—

> अबला—जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
> आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

समस्त काव्य इसी का विकास विकीर्ण एवं आधेय है। गुप्तजी काहृदय काव्य के कुछ कोमल नारी चित्रों की निर्मम उपेक्षा से विचलित हो उठा और उपेक्षिता उर्मिला तथा कैकेयी के चरित्रों को अंकित करने के पश्चात् हीना, दीना, खिन्ना एवं मलीना गोपा की कथा कहना परम धर्म समझा।

यशोधरा की कथा

यशोधरा की कथा भारत की पुरानी कहानी है। भगवान् बुद्ध की जीवनी ही यशोधरा की कथा है। कवि ने इस गाथा को महाकाव्य के रूप में अंकित करने का प्रयास नहीं किया है। शैली की दृष्टि से उसका रूप गद्य-पद्य एवं काव्य चम्पू का है। कवि ने कथा की अभिव्यक्ति गीतों के रूप में की है। सूर-सागर के समान इस ग्रन्थ की शैली भी गीतात्मक प्रबन्ध-काव्य में है। बुद्ध जी के महाभिनिष्क्रमण की थोड़ी सी कथा में चाहे प्रबन्धात्मकता भले ही रही हो, परन्तु आगे चलकर उसकी साधना और गोपा के वियोग को केवल गीतों द्वारा ही भलीभाँति अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसमें गीतात्मकता की ओर विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है। चार सर्ग तक गीतों की रचना करके कवि यशोधरा और राहुल के ...

के स्थान पर गद्य को अपना लिया है। इसका कारण यह है कि गंलाप पत्र में विशेषतः गीतों में उतारे नहीं जा सकते। अतः कहना पड़ता है कि यशोधरा एक प्रगीतात्मक काव्य है। की अब महाकाव्य के एक बड़े शिखर को गीतों के द्वारा रचने तत्पर दीख पड़ता है।

स्थान ऐक्य— कवि ने कथा वस्तु के संगठन में गीतात्मक प्रबन्ध शैली अपनाई है। कथा की आधार वस्तु बुद्धजी की जीवन-गाथा है। यशोधरा इतिहास विदित अभिनाम की अर्द्धांगिनी है। यशोधरा की कथा महाभिनिष्क्रमण से आरम्भ होती है। इस मर्मस्थल को खोजकर बुद्धदेव के आन्तरिक संघर्षों को मनोवैज्ञानिक रीति से व्यक्त करने का सराहनीय प्रयास किया है। इसके पश्चात् विरहिणी यशोधरा में आलाप-संलाप एवं मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन कवि ने कराया है। सारी कथा कपिलवस्तु के राज-प्रासाद में ही संपादित होती है। सिद्धार्थ, महाभिनिष्क्रमण, यशोधरा, नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुरजन, छन्दक, राहुल जननी, सन्धान और बुद्धदेव आदि उन्नीस अध्याय तक एक ही कथा रहती है। समस्त कथा वस्तु एक ही केन्द्रस्थल पर चक्कर काटती है। बुद्ध जी के जीवन में सम्बद्ध कथा, सूचना के रूप में हमें राज-भवन में ही बता दी जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा की रंग-भूमि कपिलवस्तु का ही राज-महल रहता है। अतः स्थान ऐक्य का यशोधरा की कथावस्तु में बड़ा सफल प्रयोग है।

घटना ऐक्य—यशोधरा में स्थान-ऐक्य से अधिक महत्व घटना-ऐक्य से रहता है। कथा को घात-प्रतिघात द्वारा एक ही मुख्य कार्य के सम्पादन में सहायक होना चाहिए। यशोधरा का रंग-स्थल कपिलवस्तु है; और उसका विरह ही सबसे महत्वपूर्ण घटना है। अतः उनका कार्य यशोधरा के हृदयोद्गारों का विस्तृत अंकन है। इस दृष्टि से वह एकांगी है। समस्त कथा यशोधरा के त्याग,

तपस्या एवं कसक की तपस्या मात्र है। कथा की एकता के लिए हमें देखना चाहिए कि काव्यगत पात्र और घटनाएँ यशोधरा के चरित्र में कहाँ तक सहायक हुई हैं।

कथारम्भ में सिद्धार्थ चिन्ता-मग्न दीख पड़ते हैं। वे विचार कर रहे हैं—

> घूम रहा है कैसा चक्र !
> वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र।
> पिसो पड़े हो इसमें जब तक,
> क्या अन्तर आया है अब तक,
> सहें अन्तर्गलता कब तक—
> हम इसकी गति वक्र !
> घूम रहा है कैसा चक्र।

इसके पश्चात् कवि प्रश्न करता है—

> कैसे परित्राण हम पावें ?
> किन देवों को रोवें-गावें ?

वास्तव में कुछ इसी प्रकार की आन्तरिक जिज्ञासा बुद्धजी के मन में आती है। इसी जिज्ञासा के कारण मनुष्य संसार से विरक्त होकर महाभिनिष्क्रमण की भूमिका तैयार कर रहे हैं। २, ३, ४, ५ गीतों में कवि ने सिद्धार्थ की वेदना बड़ी सुन्दरता से अंकित की है। चौथे गीत में वह अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुई है।

महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त यशोधरा, महाप्रजावती, नन्द, पुरजन और छन्दक की मनोव्यथा का चित्रण कर भावी करुण चित्रों को देख सकने का साहस कवि ने प्रदान कर दिया है। युवावस्था में सिद्धार्थ उसे छोड़ गये। यही सबसे बड़ा कष्ट उसे है। भारतीय हिन्दू नारी अपने पति को कष्ट में नहीं देख सकती। यदि उसका पति कष्टग्रस्त हो तो वह चाहती है कि पति की

करें। कथा प्रसिद्ध है कि धृतराष्ट्र की भार्या गान्धारी ने अपने पति के अन्धेपन में साझीदार बनने के लिए ही अपने नेत्रों पर पट्टी बाँध ली थी। यशोधरा ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर छन्दक से यह सूचना पाकर कि सिद्धार्थ ने अपने बाल कटा डाले हैं अपने सिर के बाल भी कटा डाले थे। इस गोपा की कथा त्रिया प्रधान है। यह कर्तव्य और प्रेम चाहती है।

पूर्णतः विरहमय होने पर जीवन भार स्वरूप है। इसीलिए कवि ने अब तक यशोधरा को राहुल-जननी के रूप में वर्णन कर माता के वात्सल्य रस से परिपूर्ण करने का भी प्रयत्न किया है। जीवन के इस सूनेपन में पुत्र राहुल का प्रेम ही उसका एकमात्र धन है। वह कह उठती है, ऐसे समय में भी—

'मेरी मलिन गुदड़ी में भी राहुल-सा लाल'

अन्त में यशोधरा भिक्षु बुद्ध से मिलकर क्या देती या लेती; फिर भी वह अपना सर्वस्व राहुल को देकर कहती है—

तुम भिक्षुक बनकर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी !
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी
मेरे दुख में भरा विश्व सुख, क्यों न भरूँ फिर मैं हामी
बुद्ध शरणं, धर्म शरणं, संघं शरणं, गच्छामि

इस प्रकार नारी की आत्म समर्पण की भावना को व्यक्त कर कवि ने भारतीय संस्कृति का एक गौरव चित्र यशोधरा में गूँथ दिया है, जिसकी समता कोई अन्य ग्रंथ नहीं कर सकता।

ऐतिहासिक आधार

यशोधरा काव्य में भगवान् बुद्ध के गृह-त्याग तथा ज्ञान प्राप्त कर उपदेश देने और उनके कपिलवस्तु तक लौटने की कथा है। पिछले अध्याय में हम उसकी कथावस्तु पर एक विहंगम दृष्टि डाल

चुके हैं। अब इस अध्याय में हम उसकी ऐतिहासिकता पर विचार करेंगे। स्वयं गुप्त जी ने 'कथा सूत्र' में इस कथा का सारांश दिया है। उसके कितने अंश को कवि ने अपनाया है और कितने को छोड़ने में अपने उद्देश्य की पूर्ति समझी है, यह उसे पढ़ने के बाद ज्ञात हो जायेगा। यशोधरा और गौतम की कथा 'कथा सूत्र' के अनुसार इस प्रकार है—

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र रूप में भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था। उनकी जननी माया देवी उन्हें जन्म देकर ही मानों कृत-कृत्य हो गयीं। शुद्धोदन की दूसरी रानी नन्द जननी महाप्रजावती ने उनका लालन-पालन किया।

बाल्यकाल से ही उनमें वीत राग के लक्षण प्रकट होने लगे थे। शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी ओर वृद्धि हुई। शुद्धोदन को चिन्ता हुई और उन्हें संसारी बनाने के लिए उन्होंने उनका विवाह कर देना ही ठीक समझा। खोज और परीक्षा करने पर देवदह की राजकुमारी यशोधरा ही जिसे गोपा कहते हैं, उनकी बधू बनने योग्य सिद्ध हुई। यशोधरा के पिता महाराज दण्डपाणि ने सम्बन्ध स्वीकार करने के पहले वर की विद्या-बुद्धि के साथ उसके बल-वीर्य की परीक्षा लेनी चाही। सिद्धार्थ ने शास्त्र-विद्या के साथ ही साथ शस्त्र-शिक्षा भी ग्रहण की थी। परन्तु शास्त्र की ओर ही पुत्र का मनोयोग समझ कर पिता को कुछ चिन्ता हुई। तथापि कुमार सब परीक्षाओं में अनायास ही उत्तीर्ण हो गए। "टूटत ही धनु भये विवाहू" के अनुसार यशोधरा के साथ उनका विवाह हो गया।

पिता ने उनके लिए ऐसा प्रासाद बनवाया था, जिसमें सभी ऋतुओं के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। किसी राग-रंग और आमोद-प्रमोद की कमी न थी। परन्तु भगवान् तो इसके लिए अवतीर्ण हुए नहीं थे। पिता का प्रबन्ध था, जो कुछ स्वस्थ, शोभन और सजीव हो उसी पर उनकी दृष्टि पड़े। परन्तु एक दिन

एक रोगी को, दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृत को देखकर संसार की इस गति पर गौतम को बड़ी ग्लानि एवं करुण आई और उन्होंने इसका उपाय खोजने के लिए एक दिन अप घर छोड़ दिया। उनके इस प्रयाण को "महाभिनिष्क्रमण" कहते हैं

तब तक उनके एक पुत्र भी हो चुका था। उसका नाम "राहुल"। अभी उसके जन्म का उत्सव भी पूर्ण न हुआ था कि कपिलवस्तु में उनके गृह-त्याग का शोक छा गया।

रात को अपने सेवक छन्दक के साथ 'कन्थक' नामक अश्व प चढ़कर वे चल दिये।

जिस प्रकार रुग्ण, वृद्ध और मृतक को देखकर वे चिन्तित हु ये, उसी प्रकार एक दिन एक तेजस्वी संन्यासी को देखकर उनके सन्तोष भी हुआ था। अपने राज्य की सीमा पर पहुँचकर उन्होंने राजकीय वेशभूषा छोड़कर संन्यास धारण कर लिया और रोते हुए छन्दक को कपिलवस्तु लौटा दिया। सबके लिए उनका यही सन्देश था कि मैं सिद्धि-लाभ करके लौटूँगा।

सिद्धार्थ वैशाली और राजगृह में विद्वानों का सत्संग करते हुए गयाजी पहुँचे। राजगृह के राजा बिम्बसार ने उन्हें अपने राज्य का अधिकार तक देकर रोकना चाहा, परन्तु वे स्वयं अपना राज्य छोड़कर आये थे। हाँ, सिद्धि-लाभ करके बिम्बसार को दर्शन देना उन्होंने स्वीकार कर लिया।

राजगृह से पाँच ब्रह्मचारी भी तप करने के लिए उनके साथ हो लिये थे, जो पंचभद्रवर्गीय के नाम से प्रसिद्ध हैं।

निरंजना नदी के तीर पर गौतम ने तपस्या प्रारम्भ की। बर्षों तक कठोर साधन करते रहे, परन्तु सिद्धि का समय अभी नहीं आया था।

उनका विगलित वसन-शरीर आतप, वर्षा, शीत और क्षुधा के कारण ऐसा अशक्त और जड़ हो गया कि चलना-फिरना तो दूर,

उनमें हिलने-डुलने की भी शक्ति न रह गई। विचार करने पर उन्हें यह मार्ग उपयुक्त न जान पड़ा और उन्होंने मिताहार स्वीकार करके योग-साधन करना उचित समझा। किन्तु उनके साथी पाँचों भिक्षुओं ने उन्हें तपोभ्रष्ट समझकर उनका साथ छोड़ दिया।

गौतम ने उनकी निन्दा पर दृकपात भी नहीं किया। वे निन्दा-स्तुति से ऊपर उठ चुके थे, परन्तु निर्बलता के कारण वे भिक्षा करने के लिए भी न जा सकते थे। इधर उनके शरीर पर वस्त्र भी नहीं थे। उसकी उन्हें आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु लोक में भिक्षा करने के लिए जाने पर लोक की मर्यादा का विचार वे कैसे छोड़ते?

किसी प्रकार खिसक कर पास के श्मशान से एक वस्त्र उन्होंने प्राप्त किया और उसे धारण कर लिया।

गाँव की कुछ लड़कियाँ उन्हें कुछ आहार दे जाती थीं। उसी से उनमें चलने-फिरने की शक्ति आ गई। सुजाता नाम की एक स्त्री ने उन्हें बड़ी सुस्वादु खीर भेंट की थी। कहते हैं उसे खाकर भगवान् बहुत तृप्त हुए थे।

एक दिन निरंजना नदी को पार कर उन्होंने एकान्त में एक अश्वत्थ वृक्ष देखा। वह स्थान उन्हें समाधि के लिए बहुत उपयुक्त जान पड़ा। अन्त में वही वृक्ष 'बोधि वृक्ष' कहलाया। और वहीं समाधि में निर्वाण का तत्व उनको दृष्टिगोचर हुआ।

इसके पहले स्मरमार (कामदेव) ने उन्हें उस मार्ग से विरक्त करना चाहा। क्योंकि वह विषयों का विरोधी मार्ग था। सुन्दरी अप्सरायें उनके सामने प्रकट हुईं; परन्तु वे ऐसे ऋषि-मुनि न थे, जो डिग जाते।

मार ने लुभाने की ही चेष्टा नहीं की, उन्हें डराया-धमकाया भी। कितनी ही विभीषिकायें उनके सामने आयीं; परन्तु वे अटल रहे।

स्वयं जीवन-मुक्त होकर भगवान् ने जीव-मात्र के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया।

कर्मकाण्ड के आडम्बर की अपेक्षा सदाचार को उन्होंने प्रधानता दी और यज्ञों के नाम से होनेवाली जीव-हिंसा का घोर विरोध किया।

जो पाँच भिक्षु उनका साथ छोड़कर चले गये थे, उन्हीं को सबसे पहले भगवान् का उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संसार-भर में जिसकी धूम मच गई, काशी के समीप सारनाथ में ही उस धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ। वे भिक्षुक उन दिनों वहीं थे।

रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु में भी यह समाचार कैसे न पहुँचता। शुद्धोदन ने बुद्धदेव को बुलाने के लिए दूत भेजे। परन्तु जो-जो उन्हें लेने गए थे, वे सब उनके दर्शन और उपदेश से स्वयं संसार-त्यागी होकर उनके संघ में दीक्षित हो गए। अंत में शुद्धोदन ने अपने मंत्रि-पुत्र को, जो सिद्धार्थ का बाल्य सखा था, उन्हें लेने के लिए भेजा। वह भी भगवान् के संघ में प्रविष्ट हो गया। परन्तु शुद्धोदन से प्रतिज्ञा कर आया था, इसलिए भगवान् को उनका स्मरण दिलाना न भूला।

भगवान् कपिलवस्तु पधारे। रात को वे नगर के बाहर उद्यान में रहे। सवेरे नियमानुसार भिक्षा के लिए निकले। इस समाचार से वहाँ हलचल मच गई। यशोधरा को बड़ा परिताप हुआ। शुद्धोदन ने खेदपूर्वक उनसे कहा—"क्या यही हमारे कुल की परिपाटी है?" भगवान् ने कहा—"नहीं, यह बुद्ध कुल की परिपाटी है।" भगवान् राज-प्रासाद में पधारे। सबने उनका उचित स्वागत-समादर किया। परन्तु यशोधरा उस समारोह में सम्मिलित न हुई। उससे कहा गया तो उसने यही कहा—"भगवान् की मुझ पर कृपा होगी; तो वे स्वयं ही मेरे समीप पधारेंगे।" अंत में भगवान् ही उसके निकट गए और उस समय भी महीयसी महिला ने उन्हें राहुल का दान देकर अपने महात्याग का परिचय दिया।

कविवर गुप्त जी ने यशोधरा काव्य में ऐतिहासिक कथा के रमणीय अंशों को अपना कर अपने काव्य का स्रोत प्रवाहित किया है। उसमें सब कुछ ऐतिहासिक है। ऐतिहासिकता का विरोध करने वाला कोई भी कथांश उसमें नहीं आने पाया है। गीति मुक्तक होने के कारण अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण काव्य को बल प्रदान करता है, इसमें भ्रम नहीं।

यशोधरा में सम-सामयिकता

गुप्तजी की समस्त रचनाएँ कुछ न कुछ अपना मुख्य उद्देश्य लेकर चलती हैं और उन पर तत्कालीन परिस्थितियों की छाप भी होती है, यह बात मैं पिछले पृष्ठों में देता आया हूँ। अपने समय का पूर्ण संयोग प्रतिनिधित्व करना गुप्त जी की सारी रचनाओं का उद्देश्य रहा है। गुप्तजी ने अपनी रचनाएँ उस समय लिखनी आरम्भ की थीं, जब राष्ट्र में जागृति उत्पन्न हो रही थी। समय की माँग और उसके प्रभावों से गुप्त जी कभी पीछे नहीं रहे हैं। 'फूट का परिणाम कैसा होता है' यह दिखाने के लिए यदि उन्होंने जयद्रथ-वध लिखा तो वर्णों के दोषों का उन्मूलन कर, राष्ट्र के अतीत का स्मरण करा कर राष्ट्र में समयानुसार नव जागृति उत्पन्न करने की आकांक्षा से उन्होंने "भारत-भारती" की रचना की। उनकी प्रत्येक रचना में समसामयिकता का पुट प्राप्त होता है। साकेत जैसे महाकाव्य को उन्होंने मौलिकता का पुट देकर आदर्श काव्य बना ही दिया। इसके बाद की रचनाओं पर भी सामयिकता का प्रभाव लक्षित होता है।

यशोधरा भी सामयिकता से प्रभावित हुए बिना न रुक सकी। उसमें अनेक स्थलों पर सामयिकता प्राप्त होती है। यह कहना उचित होगा कि यशोधरा की सृष्टि ही तत्कालीन प्रभावों के कारण हुई। सन् १९१९ में महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह को जन्म दिया।

इसी आन्दोलन के प्रभाव ने गुप्त जी से अनघ लिखाया और बाद में उसी के काव्य-स्वरूप यशोधरा लिखी गई।

सत्याग्रह-आन्दोलन में प्रत्येक नर-नारी को त्याग और संघर्ष में पूर्ण रूप से विश्वास रखना चाहिए। समस्त सृष्टि के उद्धार के लिए प्रत्येक व्यक्ति को बड़ा से बड़ा त्याग करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। गुप्त जी ने जिस समय यशोधरा की रचना की, उस समय नारी जागरण का आन्दोलन अपनी तीव्र गति से चल रहा था। गुप्त जी की यशोधरा में उस आन्दोलन की पर्याप्त छाप है। यशोधरा साधारण हृदया नहीं। वह चाहती है कि नारी-जाति किसी भी अवस्था में पुरुष से कम न रहे। नारी महान् त्याग कर सकती है, उसमें पुरुष से कहीं अधिक सहन-शक्ति कर देना चाहती है। गुप्त जी ने यशोधरा के चरित्र को लेकर नारी के सहयोग को महत्त्वपूर्ण बताते हुए भारत की स्वाधीनता में उसका सहयोग पुरुष के लिए महत्त्वपूर्ण बताया। उनकी यशोधरा कहती है–

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात।
पर चोरी—चोरी गए, यही बड़ा व्याघात।

× × ×

सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते!

यशोधरा इस बात के लिए बड़ी दुखी होती है कि पुरुष नारी को इतनी अयोग्यता का प्रतीक समझता है। नारी का हृदय कितना विशाल होता है, पुरुष इस बात से अपरिचित है। सबसे बड़ी त्याग-वृत्ति उसके हृदय में रहती है। वह कहती है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र — धर्म के नाते।

. इसमें गुप्त जी ने नारी का सहयोग लेने के लिए सन्देश दिया है।

आरम्भ में सिद्धार्थ के मन में जो अन्तर्द्वन्द्व चलता है वह सामयिकता का प्रभाव है। तत्कालीन दुखी मानव-समाज के कष्टों और दुखों को भव-भार बनाकर गुप्त जी ने सिद्धार्थ की भाँति प्रत्येक युवक को भोग-विलास छोड़ देने का संदेश दिया है। जब सिद्धार्थ प्राणी मात्र के दुखों को सोचते हैं तो ऐसा भासित होता है कि कवि अंग्रेजी राज की कुचालों से बचने की भारतीयों को चेतावनी दे रहा है—

> पिसो, पड़े हो इसमें जब तक,
> क्या अन्तर आया है अब तक।
> सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
> हम इसकी गति वक्र ?

अंग्रेजी शासन की इस वक्र गति को कब तक सहन किया जाए ? मानो ऐसा प्रश्न कवि भारतीयों से पूछ रहा है। भव-चक्र से तात्पर्य अंग्रेजों की दमन नीति से जान पड़ता है। ऐसा जान पड़ता है कि सिद्धार्थ के रूप में भारतीय युवक उस चक्र गति के विषैले दन्त उखाड़ने की प्रतिज्ञा करता है। मुक्ति के लिए सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण राष्ट्र के युवक का भारत की स्वाधीनता के लिए घर की छोटी सी सीमा छोड़ कर महाप्रयाण है, नारी जिसमें सहयोग की इच्छा रखती है।

मातृभूमि का महत्व प्रतिपादन भी हमें यशोधरा में कई स्थलों पर प्राप्त होता है। राहुल और यशोधरा की वार्ता में मातृभूमि की शोभा का चित्र भी जन्म स्थान के प्रति श्रद्धा रखने की दृष्टि से आया है। यशोधरा के शब्दों में—

> मधुर बनाता सब वस्तुओं को नाता है।
> माता वही उसको जहाँ जो जन्म पाता है।

सिद्धार्थ के प्रति यशोधरा की निम्न उक्ति कहना भी मातृभूमि

के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करता है, कितना पावन दृष्टिकोण है उसका, भारत के गिरि तथा सरिताओं के प्रति। वह कहती है—

देखो, यह उत्तुंग हिमालय,
खड़ा अनन्त योगी-सा निर्भय।
एक ओर हो यह विस्मयमय,
एक ओर यह गात रहे।
गए हो तो यह ज्ञात रहे।
बहे उधर गंगा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपारा।
प्लावित करदे जग-जग सारा,
हाँ, युग-युग अवदात रहे।
गए हो तो यह याद रहे।

वह हिमाचल से विनय करती है—

ओ यतियों-सतियों के आश्रय,
अभय हिमालय! भूधर-भूप।
हम सखियों की ठंडी-ठंडी,
आहों के ओ उच्च-स्तूप।
तू जितना ऊँचा, उतना ही
गहरा है यह जीवन-कूप,
किन्तु हमारे पानी का भी
होगा तू ही साक्षी-रूप।

इस काव्य से पूर्व अनेकों रचनाएँ गिरिराज को सम्बोधित करके लिखी जा चुकी थीं, फिर गुप्तजी किस प्रकार उसे भूल जाते।

उस समय काव्य में रहस्यवाद को भी स्थान मिल रहा था; अत: गुप्त जी की यशोधरा उससे कैसे बचती। कई स्थलों पर यशोधरा में रहस्यात्मक पद हैं। कहीं-कहीं तो यह मिलन बिल्कुल

आत्मा और परमात्मा का मालूम होता है। देखिए एक उदाहरण—

> प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आए।
> तुम्हें हृदय में रखकर मैंने अधर-कपाट लगाए।
> मेरे हास-विलास ! किन्तु क्या भाग्य तुम्हें रख पाए।
> दृष्टि-मार्ग से निकल गए तुम ये रसमय मन भाए।
> प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आए।

यशोधरा का गीतों में लिखा जाना ही समसामयिकता का परिचायक है। रहस्यवादी कवियों की रचनाएँ गीतों के ही अधिक उपयुक्त थीं। फलतः जनता ने भी गीतों को पसन्द किया। गुप्त जी ने उस समय की काव्य-धारा को देखकर यशोधरा की रचना गीतों में की।

अन्त में कहना पड़ता है कि यशोधरा अन्य काव्यों की भाँति समसामयिकता से प्रभावित है।

यशोधरा में गृहस्थ चित्र

मनुष्य ममत्व की प्रतिमूर्ति है। वह संसार को अपने रंग में रंग कर देखना चाहता है। वह अपने में जगत् को ढूँढ़ता है और जगत् की भिन्न-भिन्न वस्तुओं में अपने को खोजने का प्रयास करता है। कविता उसकी इसी अभिलाषा का फल है। इसीलिए कविता के द्वारा मनुष्य शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। कविता में कल्पना और भाव प्रवणता रहनी चाहिए।

यशोधरा जीवन काव्य है। उसमें यशोधरा की विभिन्न परिस्थितियों को रखकर राग-द्वेष की क्रीड़ा-स्थली में अंकित किया है। अनेकों भाव-भावनाएँ इन्हीं राग-द्वेषों से पल्लवित होती हैं। मन अथाह सागर है। उसमें असंख्य उक्तियाँ उठती हैं। उनका

अनुमान लगाना सरल नहीं। गुप्त जी ने यशोधरा के उसी हृदय-सागर में उठती भावना-तरंगों को अंकित करने की चेष्टा की है।

भावों का उत्तम और मर्मभेदी कोमल-वेग कुसुम ही है। इसी कारण हमारी संस्कृति में पारिवारिक जीवन का विशेष महत्त्व है। गुप्त जी सांस्कृतिक कवि हैं। अतः दम्पति-जीवन चिर मधुर रहना ही चाहिए। गुप्त जी के परिवार में वात्सल्य, स्नेह और ममता का अनवरत सागर है। इसी से काव्य के सागर में इसकी अनन्त झाँकी दीख पड़ती है।

यशोधरा में कपिलवस्तु के राज-परिवार के सुख-दुख की कथा है। यह कथा यशोधरा के पति-वियोग से आरम्भ होती है, फिर भी उसमें पत्नी का आदर्श महान् रक्खा गया है। माता सीता के समान वह अपने पति को अपमानित करने वाला एक भी शब्द सुनने को उद्यत नहीं है। जिस समय गौतमी कहती है—"निर्दय पुरुषों के पाले पड़कर हम अबला जनों के भाग्य में रोना ही लिखा है।" तो यशोधरा झट ही बोल उठती है—"अरी तू उन्हें निर्दय कैसे कहती है? वे तो किसी कीट-पतंग का भी दुख नहीं देख सकते।" इन शब्दों में दाम्पत्य-जीवन के प्रति, दाम्पत्य भाव-कोष को इस प्रकार खोल कर कवि ने मर्यादा की चरम सीमा पर स्थित कर दिया है। भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध जन्मजात विरक्ति की भावना के कारण रति अथवा शृंगार भावना का समावेश काव्य में नहीं हो पाता है।

महाभिनिष्क्रमण के समय प्रसुप्त गोपा को सम्बोधन कर सिद्धार्थ कहते हैं——

तू हास-विलास विनोद-पूर्ण !
अब यौवन भी हो मोद पूर्ण।
[illegible] संयोग को स्थान ही कहाँ रहा।

[illegible]पा जागती है और सिद्धार्थ को नहीं पाती है तो वह

के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए, यह उपदेश दिया है। जो मानव के विशृंखल समाज की आवश्यक एवं महत्वपूर्ण मांग है।

दूसरी ओर यशोधरा कष्ट में होते हुए भी किसी को चिढ़ने का अवसर नहीं देती। वह निरन्तर अपनी मानसिक प्रवृत्तियों को सँभाले हुए सबसे उचित एवं प्रेम-पूर्ण व्यवहार ही करती है।

यशोधरा में विरह

विरह प्रेम का तप्त स्वर्ण है। वेदना की अग्नि में तप कर प्रेम की मलीनता गल जाती है और फिर जो कुछ शेष रह जाता है, वह निर्मल तथा शुद्ध होता है।

विरह में अतृप्ति की उत्सुकता के कारण रसानुभूति की मात्रा अधिक होती है। विरह अजर-अमर है। वह आदिकाल से नारी के हृदय में निवास करता आ रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा।

यशोधरा में गुप्त जी ने गीतों के द्वारा युग युग की नारी के हृदय की वेदना को साकार रूप प्रदान किया है। उसके विरह में हृदयगत विभिन्न अन्तर्दशाओं का सूक्ष्म वर्णन हमें मिलता है।

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट विरह की दस अन्तर्दशाओं में, मृत्यु को छोड़ कर नौ दशाओं का मार्मिक वर्णन कवि ने यशोधरा में किया है। नवयुवती रत्न आकांक्षाओं के समन्वित उज्वल भविष्य की कल्पना करने वाली, राज-सुख भोगी यशोधरा के लिए इस आयु में जिसमें जीवन का सार, एवं वासनाएँ होती हैं इससे अधिक और दुःख का कारण क्या हो सकता है कि उसका जीवन-सर्वस्व, प्राण-वल्लभ, शुष्क मुक्ति की खोज में राजपाट, घरद्वार ही नहीं, वरन् रत्न समान स्त्री-रत्न को भी छोड़ गया है। उसे आशा तो यह थी कि वह अपने यौवन की उद्दाम तरंगों के मध्य अपने जीवन

की उज्ज्वलता के आधार पर अपने प्रियतम को माया के बंधनों में बाँध सकेगी, किन्तु परिणाम तो इसके विपरीत निकला। यशोधरा मधुर वेदना का शनैः-शनैः सुखानुभव करना जानती थी। वह इससे भली-भाँति परिचित थी कि वेदना को कैसे दबाकर हँसा जा सकता है। वह जानती थी कि विरहाग्नि को किस प्रकार पति हित कामना शान्त कर सकती है। बस उसे केवल एक ही दुःख है—

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात ;
पर चोरी-चोरी गए, यही बड़ा व्याघात ॥
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

यह दुख उसे इस कारण और भी कष्ट देता है कि इतने अधिक समय तक साथ रहने पर भी सिद्धार्थ उसे न परख पाये—

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहिचाना ?

× × ×

आज अधिक वे भाते ।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते ।

इसी क्षण उसके हृदय में पति के प्रति स्त्रियोचित एक गौरव की रेखा खिंच जाती है—

जायें सिद्धि पावें वे सुख से—

किन्तु नारी यशोधरा तुरन्त अपनी अन्तर्वेदना को छिपाने में अपनी असमर्थता और अवशता प्रकट करती है। यथा—

किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था, त्यागा ;
रहे स्मरण ही आते !
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

जब छन्दक सिद्धार्थ को राज्य-सीमा पर छोड़कर लौटा तो उसने बताया कि सिद्धार्थ ने अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र और आभूषण दे दिया, अपने सिर के बाल भी कैंची से काट दिये हैं, तो यशोधरा ने भी अपने काले-काले बाल सिर से उतार दिए—

आओ, मेरे सिर के बाल !
आलि, कर्त्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल !
उलझें यहाँ न ये आपस में सुलझें वे व्रत-पाल ;
डँसें न हाय ! मुझे एड़ी तक विस्तृत ये विकराल ।

फिर वह स्वीकार करने लगी——

नार चूड़ियाँ ही हाथों में पड़ी रहें चिरकाल ।
बस सिंदूर-विन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल ॥

सुहागिन नारी यही सोच सकती है। 'सुख-सुहाग की लाली रहने से ही यह माता यशोधरा बनकर जीवन-यापन कर सकी। दुःख में सुख की घूंट पीकर अपने सम्मान की रक्षा कर सकी। राहुल को भगवान् बुद्ध के हाथों में सौंप कर नारी-हृदय की महान् उदारता तथा त्याग का परिचय दे सकी। उसके जीवन की सांत्वना यही थी—

मेरी मलिन गुदड़ी में भी है राहुल सा लाल !

यशोधरा इस सान्त्वना के रहते हुए भी अपना दुःख न बिसार सकी। उस दुःख में वही टीस उसके कोमल हृदय को बार-बार कचोटती है कि यदि सिद्धार्थ ने उसकी जाग्रतावस्था में घर छोड़ा होता तो वह उन्हें हँसकर विदा करती। स्वयं उन्हें सुसज्जित कर उनकी पूजा करती, आरती उतारती। इस प्रकार वह यह प्रदर्शित कर सकती कि किस प्रकार नारी समस्त वेदनाओं को सहन कर सकती है। वियोग उस समय यदि उसके पास आता तो—

मिला न हो ! इतना भी योग ,
मैं हँस लेती तुझे वियोग !

परंतु ऐसा न हुआ और वह क्षण-क्षण जलती और घुटती है—

बिदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है;
हन्त! अन्त में यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है।
ले न सकेंगी तुम्हें वही वह तुम सब कुछ हो जिसके,
यह लज्जा, यह क्षोभ भाग्य में लिखा गया कब, किसके?
मैं अधीन, मुझको सब सहना, नाथ, ! मुझे इतना ही कहना।

यह नारी-हृदय की वेदना की ओर चरम सीमा है। धीरे-धीरे यशोधरा विस्मृति की ओर जा रही है। यह नारी की वह अवस्था है, जहाँ से वह तपित स्वर्ण के समान पवित्र और उज्ज्वल होकर निकलती है। जहाँ उसके नारीत्व का उच्चतम दिग्दर्शन होता है। अपनी सुधि खोई-सी अवस्था में उसका वियोग नाम-मात्र को ही रह जाता है। यथा—

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।

ऐसी अवस्था में उसे मृत्यु भी सुन्दर प्रतीत होती है। पशु-पक्षी और लता-द्रुम भी उसकी वियोग-वेदना में भाग लेते हुए पाये जाते हैं। ऐसी बेसुध अवस्था में वह भ्रम में कहने लगती है—

सखि, प्रियतम हैं वन में?
किन्तु कौन इस मन में?

परन्तु शीघ्र ही उसे कुछ स्मृति-सी आने लगती है और वह सोचती है—

दिव्य-मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ,
प्रलय! पिघल कर प्रिय न जो प्राणों में ढल जायँ।

दुख का आधिक्य हो जाने पर मानव मृत्यु की इच्छा करने लगता है। यदि यह मनोवांछित मृत्यु उसे न मिले तो उसकी व्यथा और भी तीव्र और दुखदायक हो जाती है। नारी यशोधरा के समक्ष 'मरण' भी सुन्दर बन कर आया। उसका शरण भी उसे 'भाया'। अपनी अवस्था वर्णन कर वह स्वयं कह उठती है—

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार,
रहा कराल कठोर काल सो हुआ सदय सुकुमार
नर्म सहचर-सा छाया री।

गोपा यदि सुन्दर मरण वर्णन करना चाहती है, परन्तु उसे संकोच केवल इसीलिए है कि 'स्वामी' उसको मरने का भी अधिकार न दे गये। इस प्रकार अधिकार वंचिता हो, वह व्यथा से दो भागों में विभक्त हो गयी है।

उसका एक अंश तो घोषणा करता है—

सब सहने को देह बना।
जलने को स्नेह बना।
स्वामी के सद्भाव फैलकर
फूल-फल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानों
नूतन निर्झर छूटे।

परन्तु उसके अन्तरतम में गहरा पैठा हुआ दूसरा अंश कहता है—

प्रिय-स्पर्श की पुलकावलि,
मैं कैसे आज बिसारूँ।
× × ×
तन गाऊँ मन मारूँ
पर क्या मैं जीवन हारूँ!
उनके तप के अग्निकुण्ड से
घर-घर में हैं आगे।
मेरे धाम हाय! फिर भी
तुम नहीं कहीं से भागे।

इन पंक्तियों में विरह, नैराश्य और मार्मिक दशा देखते ही बनती है।

यशोधरा विरहाग्नि में भस्म हो रही है। एक क्षण बीता, दो बीते, एक घंटा समाप्त हुआ, दिन व्यतीत हुआ, मास समाप्त हुए। ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा और फिर शरद् तथा पतझड़ का आगमन हुआ। इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कल के पौधे आज वृक्षों में परिणत हो गए। प्रातः की कली पुष्प बनकर चहकने लगी। पक्षी गण कलरव कर रहे हैं। दिशाएँ सुगन्धित हैं। चातक पीऊ-पीऊ शब्द कर रहा है, परन्तु यशोधरा के वनमाली अभी तक नहीं लौटे। यशोधरा विकल है कि कहीं—

ढलक न जाए अर्घ्य आँखों का, गिर न जाए यह थाली,
उड़ न जाए पँछी पाँखों का, आओ हे गुण-शाली,
ओ मेरे वनमाली।

इस स्थान पर यशोधरा के कलेजे की हूक ने अन्तरतम से निकल कर वाणी का रूप धारण कर लिया है। इसी समय एक चातकी 'पीऊ पीऊ' चिल्ला उठी और उसके साथ ही यशोधरा का हृदय टूक-टूक होने लगा, जिसकी पीड़ा से विह्वल होकर वह कह उठी—

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, बलि जाऊँ इस रट की!
मेरे-रोम रोम में आकर यह काँटे-सी खटकी।

अन्त में व्यथित होकर वह निराश हो जाती है। इसी समय उसे पूर्व स्मृतियाँ आने लगती हैं, जिनसे तिलमिला कर वह कह उठती है—

फलों के बीज फलों में फिर आये,
मेरे दिन फिरे न हाय!
गये घन के कै वार न घिर आये!
वे निर्झर फिरे न हाय।
मैं भी थी सखि, अपने
मानस की राज-हँसनी रानी,

आली, मेरे मनस्ताप में पिष
रहा कराल कठोर काल सो दुःख
मर्म सहचर-सा छाया

गोपा यदि सुन्दर मरण वर्णन करना
संक्षेप केवल इसीलिए है कि 'स्वामी'
अधिकार न दे गये। इस प्रकार अधिकार दं
दो भागों में विभक्त हो गयी है।

उसका एक अंश तो घोषणा करता है—

सब सहने को देह बना
जलने को स्नेह बना;
स्वामी के सद्भाव फैलकर
फूल-फल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानों
नूतन निर्झर छूटे।

परन्तु उसके अन्तरतम में गहरा पैठा दुःख
कहता है—

प्रिय-स्पर्श की पुलकावलि,
मैं कैसे आज बिसारूँ।
× × ×
तन गाऊँ मन मारूँ
पर क्या मैं जीवन हारूँ!
उनके तप के अग्निकुण्ड से
घर-घर में हैं जागे।
मेरे धाम हाय! फिर भी
तुम नहीं कहीं से भागे

इन पंक्तियों में विरह, नैराश्य
बनती है।

तेरे सारे मल धोने को;
हँस तू, है सब कुछ होने को।

अन्तिम पंक्ति में माता का कितना महान् त्याग निहित है। माता इसकी चिन्ता नहीं करती कि उसका बालक उसके लिए क्या करेगा। वह गलती है बालक के पालन के लिए। उसे और कुछ न चाहिए। उसकी आराधना का केन्द्र-बिन्दु यही है कि—

गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है।

माता का जीवन नारी रूप में अन्धकार में ही रहता है। नारी की जीवन-नौका माता होकर 'जीर्ण-तरी' हो जाती है। उस समय—

जीर्ण-तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!
कठिन पंथ, दूर पार और यह अँधेरी
सजनी उल्टी बयार, वेग धरे प्रखर धार,
पद पद पर विपद-वार, रजनी घन घेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि-भार, देख, अरी एरी!

ऐसी घन घेरी रजनी में माता कहती है—

ठहर, बाल-गोपाल कन्हैया।
राहुल, राजा भैया!
कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको हार गई मैं दैया,
सद दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध-फेन-सी शैय्या।
तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भँवर में नैया,
आ, मेरी गोदी में आ जा, मैं हूँ दुखिया मैया।

राहुल अब बोलने लगा है। वह कहता है—

मैया है तू अथवा मेरी दो थन वाली गैया!

राहुल यशोधरा सम्वाद में गुप्त जी ने सरस तथा वात्सल्य-पूर्ण भाव मार्मिकता से व्यक्त किये हैं, जिनसे अनुमान होता है कि माता के कोमल हृदय की कितनी परख आपको है।

घर का दीपक या तो पति होता है या पुत्र, ऐसा हिन्दू-संस्कृति में माना गया है। इसी भावना से प्रेरित हो यशोधरा कहती है—

आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों
'अम्ब-अम्ब' कहता है !
'पिता' पिता, कह बेटा,
जिनसे घर सूना रहता है।

तीसरी पंक्ति में नारि वेदना की बलि-वेदी पर बलिदान होने की कहानी है। भारतीय हिन्दू नारी अपने प्राण-वल्लभ की सुधि तो बिसारती ही नहीं, पर वह यही चाहती है कि यदि कोई बात करे तो पति की, चर्चा चले तो उनकी, सुधि करावे तो उनकी। उनकी सुधि की बेसुधि में वह यही तो चाहती है कि कोई उसे उसके 'हृदय-धन' का स्मरण कराये।

दूसरी उक्ति भी वेदना के कोमल आवरण में, वेदना के व्यक्त करने में—मातृत्व-भावना के सुन्दर सुमन बन कर किस प्रकार खिल उठी है। यह कोई भावुक और सरस हृदय ही जान सकता है।

यशोधरा राहुल को डिठौना लगा रही है। इसलिए कि नज़र न लगे। वह किसी कुदृष्टि का शिकार न हो किन्तु राहुल पूछ बैठता है—

मान लिया आँखों में अंजन,
माँ किस लिए डिठौना !

यशोधरा उत्तर देती है—

यही डीठ लगने के लच्छन—छूटे खाना-पीना,

तब राहुल कितनी मार्मिकता से पूछता है; मानो यही बात है न:—

डीठ लगी तब स्वयं तुम्हें ही, तू है सुधि-बुध हीना,
तू ही लगा डिठौना, जिसको कौन बड़ा डिठौना।

उक्त विवेचना से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि गुप्तजी ने यशोधरा में वात्सल्य-रस मिश्रित करुण-रस की धारा प्रवाहित कर दी है। माता पुत्र का वात्सल्यमय चित्रण कवि ने बड़ा ही हृदय-ग्राही किया है।

यशोधरा में प्रकृति-चित्रण

काव्य और प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना प्रकृति-चित्रण के काव्य की कल्पना करना कठिन है। काव्य सौंदर्य का वर्णन करता है और प्रकृति सौंदर्य का भांडार है। प्रकृति के विविध रूप मनुष्य की भावनाओं को अनन्त काल से प्रभावित करते रहे हैं, क्योंकि प्रकृति के रूपों और व्यापारों से मनुष्य न युगों से ही परिचित है और लुब्ध क्षुब्ध होता आ रहा है। बल्कि उनका हमारे भावों के साथ सीधा सम्बन्ध है। इसलिए उनके द्वारा इसका परिपाक होता रहा है। काव्य में प्रकृति के इतने अधिक वर्णन का यही कारण है।

हिन्दी में प्रकृति के इन चित्रों का अंकन छः प्रकार से हुआ है।

१—प्रकृति का प्रकृति-चित्रण।

२—घटनाओं की पृष्ठ-भूमि के रूप में।

३—प्रकृति उद्दीपन के रूप में।

४—उपदेश के लिए।

५—कवि की अन्तरात्मा से अनुरंजित।

६—परम्परानुगत।

यशोधरा में प्रकृति-चित्रण उद्दीपन के रूप में किया गया है। यशोधरा वर्षा-ऋतु में सिद्धार्थ की स्मृति से विकल हो उठती है और कहती है—

> जागी किसकी बाष्प राशि जो सूने में सोती थी?
> किसकी स्मृति के बीज उगे ये सृष्टि जिन्हें बोती थी?

अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हें होती थी।

उसी प्रकार शिशिर के आगमन पर वह हृदय की पीड़ा को व्यक्त करती है—

किन्तु शिशिर, मैं ठंडी साँसें हाय ! कहाँ तक धारूँ !
तन गारूँ, मन मारूँ, पर क्या मैं जीवन भी हारूँ !

कितनी निराशा छिपी है इन शब्दों में—

प्रिय के संसर्ग से जिन स्थानों पर आनन्द-विहार किया था, उन्हें देखकर पुरानी स्मृति हृदय में एक नवीन टीस उत्पन्न कर देती है। उस समय की क्रीड़ायें (जिस समय सिद्धार्थ उसके पास थे) याद कर वह रोहिणी से कहती है—

रोहिणी ! हाय वह तीर,
बैठते आकर जहाँ वे धर्म-घन, ध्रुव धीर
मैं लिए रहती विविध पक्वान्न भोजन, खीर,
वे चुँगाते मीन, मृग, खग, हंस, केकी, कीर

कभी-कभी आनन्द में वह कह उठती है—

आली, पुरवाई तो आई, पर वह घटा न छाई,
खोल चँचु-पुट चातक, तूने ग्रीवा वृथा उठाई।
उठकर गिरा शिखण्ड शिखी ने गति न गिरा कुछ पाई,
स्वयं प्रकृति ही विकृति बने तब किसका वश है भाई।

दुख में उसे समस्त जग विकृत प्रतीत होता है। उस समय तो ज्ञात होता है कि—

मैंने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा—व्यथा सही।

इस विरह-वेदना में मौलिकता के दर्शन हमें होते हैं। यशोधरा की वेदना अब सर्वदेशीय हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति उसका अनुभव करता है। स्वयं प्रकृति ही उसकी वेदना से पीड़ित है—

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, इस रट की,
मेरे रोम-रोम में आकर यह काँटे-सी खटकी

× × × ×

मुझसे पहले तुम सनाथ हो, यही विनय इस घट की।
प्रकृति के प्रत्येक अवयव में यशोधरा को अपने प्रिय के दर्शन होते हैं:—

स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानों नूतन निर्भर छूटे।

उसे जो दुख है तो केवल यही कि—

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देख कर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सब के आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड से घर घर में हैं जागे
मेरे कम्प, हाय! फिर भी तुम नहीं कहां से भागे।

ऐसी दशा में भी दुःखिनी यशोधरा अपना भार-वहन कर रही है। क्योंकि—

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तन्तु कब टूटे?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे।
स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हें खोजने को ही मानों नूतन निर्भर छूटे।

इस प्रकार शान्त धारण करने पर भी जब—

कूक उठी है कोयल काली।

तो—

ओ मेरे वन माली!

कहकर यशोधरा का विरह से व्याकुल होना स्वाभाविक ही है। प्रिय के सम्पर्क में सभी वस्तुएँ आनन्ददायी हो जाती हैं, परन्तु उससे विच्छेद होने पर वही दुखदायी हो जाती हैं—

उजरा यह कुंज कुटीर यहीं,
झड़ता उड़ अंशु अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब हैं,
सुन चातक की रट "पीव कहाँ !"
अब भी सब साज-समाज वही,
तब भी सब आज अनाथ यहाँ।

उसे यह आनन्द कष्ट देता है। वह कहती है कि—

मैं भी थी सखि, अपने
मानस की राजहंसनी रानी

परन्तु अब—

सपने की—सी बातें।

आनन्द-विहार की एक सम्पूर्ण कहानी अन्तर्हित है, इन शब्दों में।

जिस समय बालक राहुल पूछता है—

"और यह पंछी कौन बोला वाह !"

तब यशोधरा उत्तर देती है—

"कोयल है।"

बालक पुनः पूछता है—

माँ, क्यों इस कूक की तू हूक-सी है सहती !

कवि ने बालक के मुख से 'हूक सी है सहती' कहलाकर वेदना का आधिक्य कोयल के सम्पर्क से व्यक्त कराया है।

विरह में समस्त आनन्दमयी वस्तुएँ कष्ट-दायक हो जाती हैं। यशोधरा शीतल पवन से पूछती है:—

पवन, तू शीतल-मन्द-सुगन्ध।
इधर किधर आ भटक रहा है ! उधर-उधर ही अन्ध।

पौ फटने में इसी प्रकार कष्ट का अनुभव कर वह कहती है—

भरे हैं अपने भीतर आग तू
री छाती, फटी न हाय !

दुख के अधिक गम्भीर हो जाने पर वह समस्त प्रकृति में अपने दुख का जाल फैला के देखती है और कहती है—

सब सहने को देह बना,
जलने को ही स्नेह बना।
स्वामी के सद्भाव फैल कर
फूल-फूल में फूटे,।
उन्हें खोजने को ही मानों
नूतन निर्झर छूटे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी ने यशोधरा में प्रकृति-वर्णन, यशोधरा के वियोग को ही उद्दीप्त करने के लिए किया है। गुप्तजी ने प्रकृति में विरह भावनाओं का आरोप किया है। परन्तु सभी में नवीनता है और बहुरंगी भावना भी। सबसे बड़ी बात इसमें यह है कि यत्र-तत्र विश्व-कल्याण की भावनाएँ मुखरित हो उठी हैं।

यशोधरा में सांस्कृतिक आधार

संस्कृति मानव-जीवन की उस अवस्था का नाम है, जब वह प्राकृत दशा से ऊपर उठकर वह अपनी स्वभावगत इच्छा, आकांक्षाओं, प्रवृत्तियों निवृत्तियों का उचित सामंजस्य कर लेता है। इस अवस्था में वह अपने राग-विरागों को व्यष्टि के तल से उठा कर समष्टि के तल पर लाता है और अपने को सापेक्षता में देखता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रवृत्तियों का समन्वय ही संस्कृति है। संस्कृति को प्राप्त करने के लिए जीवन के अन्तस्थल में प्रवेश करना पड़ता है। स्थूल के आवरण के पीछे जो सत्य, शिव और सुन्दर का सूक्ष्म स्वरूप छिपा रहता है, उसी को पहिचानने का प्रयास संस्कृति है। जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की

ओर, रूप से भाव की ओर बढ़ना उसका ध्येय है। संस्कृति का व्यक्त रूप है उपचार, विचार, विश्वास, शिल्प-कौशल।

प्रत्येक जाति एवं देश की अपनी विशेष सामाजिक प्रेरणायें आकांक्षाएँ और विश्वास होते हैं, जिन पर भौगोलिक आधारों एवं ऐतिहासिक परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है। गुप्तजी राष्ट्रीय कवि हैं। उसमें भारतीयता ओत-प्रोत है। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उन्होंने भारतीयता को ही अपनाया है। यही उनकी प्रमुख विशेषता है।

यशोधरा का सांस्कृतिक आधार शुद्ध भारती है। इसमें भारतीय जीवन के आदर्श प्राप्त होते हैं। यशोधरा गृहस्थ जीवन का चित्र है। यशोधरा मूक नारी की आकांक्षाओं एवं भावनाओं का ग्रन्थ होने से उसमें हिन्दू-परिवार की रीति नीति की ही विवेचना है। यशोधरा के जीवन की गाथा हिन्दू नारी के त्याग, कर्तव्य, निष्ठा, शील एवं तपस्या की कथा है।

हिन्दू संस्कृति सदा से मानव-कल्याण के लिए अग्रसर रही है। यही बात हमें महाभिनिष्क्रमण में परिलक्षित होती है। बुद्ध जी संसार के कष्टों को देखकर विरक्त भावना से उद्वेलित हो कहते हैं—

मैं त्रिविधि-दुख विनिवृत्ति हेतु,
बाँधूँ अपना पुरुषार्थ-सेतु।
सर्वत्र उड़े कल्याण केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।

× × × ×

आ मित्र-चक्षु के दृष्टि-लाभ,
ला हृदय—विजय रस वृष्टि-लाभ।
पा, हे स्वराज्य, बढ़ सृष्टि-लाभ,
जा दण्ड-भेद, जा साम-दाम,
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।

तव जन्मभूमि, तेरा महत्व,
जब मैं ले आऊँ अमृत - तत्व,
यदि पा न सके तू सत्य सत्व,
तो सत्य कहाँ ? भ्रम और भ्राम !
ओ क्षण-भंगुर भव राम राम !

स्वयं यशोधरा को अभिमान है कि
सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात।

इसी लिए शुद्धोदन जब बुद्ध जी को खोजने का प्रस्ताव करते हैं तो यशोधरा मना करती है और कहती है—

तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ हैं,
खोज हम लावें उन्हें क्या वे असमर्थ हैं ?
पा लिया उन्होंने किन्तु ज्ञान का उजाला।

अतः उनको लौटाने की चेष्टा करना मानव-समाज के प्रति अन्याय करना होगा।

जिस समय राहुल यशोधरा से प्रश्न करता है——

अम्ब, क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया ?
क्यों स्वदेश छोड़, परदेश उन्हें, भाया ?

उसी समय यशोधरा उत्तर देती है—

बेटा, घर छोड़ वे गये हैं अन्य दृष्टि से,
जोड़ लिया नाता उन्होंने सब सृष्टि से।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यशोधरा के द्वारा गुप्त जी ने प्रत्येक व्यक्ति में मानव-कल्याण की अपूर्व भावना को जाग्रत करना चाहा है यही विश्व-कल्याण की भावना हिन्दू-संस्कृति की विशेषता अनन्त काल से रही है।

सम्मिलित हिन्दू-परिवार में हिन्दू-संस्कृति की एक विशेषता है।

सम्मिलित रहने की भावना में 'स्व' की भावना का अन्त कर सार्वजनीन हित की उदात्त भावना को विकास देने का ही उद्देश्य निहित है। जब तक मनुष्य अपने परिवार के घटकों को सान्त्वना देना न सीखेगा, तब तक वह विश्व-कल्याण के योग्य कैसे बन सकेगा!

वैशाली के राज-परिवार में सिद्धार्थ द्वारा परित्यक्ता रहने से यशोधरा प्रतिपल पीड़ित एवं शोकाकुल रहती है। महाराज शुद्धोदन, महा प्रजावती एवं घर की दासियाँ चित्रा-विचित्रा तथा गोपा की दासियाँ सदा उसको सान्त्वना देने की चेष्टा करती हैं। कभी-कभी वह माता सीता एवं गोपियों की विरह-कथा कह गोपा को धैर्य बँधाती हैं। शकुन्तला की कहानी द्वारा पुनर्मिलन का विश्वास दिलाती हैं।

हिन्दू-संस्कृति कर्तव्य भावना को तीव्र करती है और अधिकार भावना को नकारात्मक। यह भावना यशोधरा में सर्वत्र छिटकी मिलती है। सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण से दुखी महाराज नन्द कहते हैं—

आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!
राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार।
छोड़ा मेरे लिये हाय! क्या तुमने आज उदार!
कैसे भार सहेगा सम्प्रति, राहुल है सुकुमार!
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!
नन्द तुम्हारी थाती पर ही देगा सब कुछ वार,
किन्तु करोगे कब तक आकर तुम उसका उद्धार!
आर्य, यह मुझपर अत्याचार!

'नन्द तुम्हारी थाती पर देगा सब कुछ वार' में सारा ही हिन्दू सांस्कृतिक इतिहास भरा पड़ा है। आगे जितना भी नन्द का जीवन प्रकट होता है, इसी उद्देश्य से गुप्तजी ने इस पंक्ति के द्वारा शुद्धोदन की सम्मीनता के दर्शन कराये हैं।

छोटे से लेकर बड़े तक सभी अपना कर्तव्य पालन में अग्रसर हो रहे हैं। तब फिर बालक राहुल भी क्यों न इस भावना से ओत प्रोत रहता! पिता के प्रति उसका भी कोई कर्तव्य है। वह कहता है—

व्यर्थ गल गया मेरा—रसाल, मैंने स्वयं नहीं चक्खा था;
माँ, चुनकर सौ-सौ में से इसे पिता के लिये बचा रक्खा था।

ऐसी प्रेम-भावना से विभोर राहुल को आशीर्वाद देते, यदि यशोधरा के साथ हम भी कह दें—

पर चेतन-भावना तभी हो तेरी
अर्पित हुई उन्हें है।

तो आश्चर्य नहीं।

हिन्दू नारी की आकांक्षाएँ, कर्तव्य निष्ठा, आत्मोत्सर्ग, विस्मृति एवं त्याग और तपस्या की उदात्त भावनाओं के दर्शन निम्न गीत में होते हैं—

जाओ, मेरे सिर के बाल।
अलि, कर्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल!
उलझें यहाँ न ये आपस में सुलझे वे मत-पाल।
डसे न हाय! मुझे एड़ी तक विस्तृत ये विकराल।
चसें न और मुझे अब आकर हेमहीर, मणि माल,
चार चूड़ियाँ ही हाथों में पड़ी रहें चिरकाल।
मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल-सा लाल।
क्या है अंजन-अंगराग जब मिली विभूति विशाल!
बस सिन्दूर-बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल,
यह जलता अंगार जला दे उनका सब जंजाल।

हिन्दू नारी इससे अधिक और क्या चाहती है। इन पंक्तियों में पति-पत्नी के सम्बन्ध के धागे से बद्ध भी नारी के हृदय की भावनाओं का वास्तविक चित्रण गुप्तजी ने उपस्थित किया है। हिन्दू संस्कृति की शालीनता को हृदय-गत कराने का प्रयत्न कर वासनात्मक तत्वों से

आवृत नव-समाज को पवित्रता का सन्देश देकर काम-भावना का प्रतिकार किया है।

यशोधरा की इच्छा है—

बस मैं ऐसी ही निभ जाऊँ।
राहुल, निज रानीपन देकर
तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ तो
इस परवश मन को बहलाऊँ।
उबटन कर नहलाऊँ तुझको
खिला - पिलाकर पट पहनाऊँ।
रीझ-खीझ कर या रूठ-मनाकर
पीड़ा को क्रीड़ा कर लाऊँ,
यह मुख देख - देख दुख में भी
सुख से दैव-दया - गुण गाऊँ।
स्नेह - दीप उनकी पूजा का
तुझ में यहाँ अखंड जगाऊँ;
डीठ न लगे, डिठौना देकर,
काजल लेकर तुझे लगाऊँ।

कुमारी के पश्चात् पत्नी और पत्नी के पश्चात् माता के कर्तव्यों की पूर्ति में ही नारी जाति की करुण-कहानी निहित है जिसका अंकन गुप्तजी ने गम्भीरता से किया है। आपने सम्पूर्ण कला में हिन्दू संस्कृति के आदेश एवं सन्देश यशोधरा में भर दिये हैं। पत्नी एवं माता के अधिकार एवं कर्तव्यों की सुन्दर अभिव्यंजना जैसी यशोधरा में हुई है, अन्यत्र उसके दर्शन मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। यशोधरा के लिये—

मरने से पहले यह जीना
अप्रिय आशंकाएँ करना,
भय खाना, आँसू पीना।

इन्हीं शब्दों से प्रभावित गुप्तजी को कहना पड़ा था—

अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी !

यशोधरा का विरह उसकी परिस्थिति की दयनीयता के कारण भी करुण बन जाता है। वह निरसम्बल है। उसके लिए वियोग के आदर्श के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान नहीं है। परिस्थिति की विषमता ने उसे परवश बना दिया है। हिन्दू नारी शील एवं लज्जा की प्रतिमूर्ति होती है। वह अपने मन की कथा छुपा कर ही संजोना चाहती है। उसको व्यक्त कर वह दूसरों पर उसका भार नहीं डालना चाहती। यही संयम, भावना हमारी संस्कृति की अपूर्व देन है। यशोधरा भी शान्त भाव से विरह सहन करती हुई कहती है—

जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
कठिन पंथ, दूर पार, और यह अँधेरी।
सजनी उल्टी बयार
वेग भरे प्रखर धार,
पद-पद पर विपद-वार
रजनी घन-घेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
जाना होगा परन्तु;
खींच रहा कौन तन्तु !
गरज रहे घोर जन्तु,
बजती भय भेरी
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
समय हो रहा सपत्र
अपने वश कौन यत्न !
गाँठ में अमूल्य रत्न,
बिसरी सुधि मेरी।

जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, देरी!
भव का यह विभव भार
पाती भर किन्तु हार।
ले लें कब लौट नाथ!
तीर बचे चेरी,
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, देरी।
इस निधि के योग्य पात्र
यदि था यह तुच्छ गात्र,
तो यही प्रतीति मात्र
देव, दया तेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, देरी।

इससे अधिक दीनता, परवशता, खिन्नता एवं सहन-शीलता का परिचय और कहाँ मिल सकता है। अन्त में यह पीड़ा इतनी अधिक हो गई कि—

यह जीवन है या मौत, समझ में नहीं आता,
अब दर्द तो है, दर्द में तकलीफ नहीं है।

यशोधरा का इसी दशा का वर्णन उसी के शब्दों में सुनिए—

जाना चाहे यदि जन्म, मज़े ही जावे,
आना चाहे, तो स्वयं मौत भी आवे।
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे,
मेरा तो सब कुछ वही मुझे जो भावे।
मैं मिलन शून्य में विरह छटा सी पाऊँ,
कह मुक्ति भला, किस लिए तुझे, मैं पाऊँ।

हमारी संस्कृति में कुछ ऐसे ऐतिहासिक नाम हैं जिनके स्मरण मात्र से पूरा सांस्कृतिक इतिहास नेत्रों के सम्मुख घूमने लगता है। यशोधरा में इन नामों का स्मरण कराया गया है। नल और दमयन्ती दुतया ध्यन्त और शकुन्तला, पति-पत्नी सम्बन्ध के प्रतीक हैं। अतः

मानना पड़ता है कि हिन्दू संस्कृति के सभी आधार-स्तम्भों को यशोधरा में अपना कर गुप्तजी ने यशोधरा को नारी-जाति का गीता बना दिया है जिसको पढ़कर आज ही विशृंखल नारी अनेकों पाठ सीख सकती है।

यशोधरा में आधुनिकता

सन्त कवियों ने नारी को माया कहा है और उसकी घोर निन्दा की है। कबीर-नानक आदि सभी ने नारी को दुर्गम घाटी माना है—

नारी की माईं परतरी, अन्धा होत भुजंग।
कबिरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग॥

——कबीर

इतना ही नहीं—

साँप बीछि को मंत्र है, माहुर झारे जात।
बिकट नारि पाले परी, काटि करेजा खात॥

——नानक

ढोल गँवार सूद्र पसु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी।

——गोस्वामी तुलसीदास

सब कवियों ने यह कहकर नारी की निन्दा करके नवयुग के मानवता-वादियों के सामने एक विकट समस्या उपस्थित कर दी। वह सन्तों की विषय-वासना से दूर भौतिक वाद से परे रहने की भावना को सुन कर चौंक पड़ता है और हिंदू-समाज को अत्याचारी घोषित कर सुधार की ओर अग्रसर हो इस कार्य का अग्रदूत बनना चाहता है।

इसके अनुसार नर और नारी समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। आज का राष्ट्रीय एवं नैतिक पतन, नारी का अपमान है।

अतः समाज-सुधारक वास्तविकता को बिना समझे इतने आगे चले जाते हैं कि वह हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को ही इस दुरावस्था का मूल कारण मानकर उसकी जड़ को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। और नवीन ढंग से सारे समाज को नए ढाँचे में ढाल लेना चाहते हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय नारी भी अधिकार-प्राप्ति की भावना से जागरूक हो उठी है और वह भी इस नूतन युग में अपना नवीन संसार बना लेना चाहती है।

नारी की अवस्था न सुधारी जाए, इस बात का कोई समर्थन नहीं कर सकता है। देश एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए सभी अंगों को स्वास्थ्य-लाभ कराना ही होगा। यही बात हमारे राष्ट्रीय कवि गुप्त जी भी मानते हैं। उनका मत है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' स्मृतिकार मनु की इस भावना का कौन अनादर नहीं करता। हिन्दू-सभ्यता घर में महिलाओं की पूजा का उपक्रम करती। और लघु कार्यों में उनके मूल्यवान् परामर्श या आदेश देती हैं। हमारे यहाँ नारी के दो रूपों ने विशेष आदर पाया है। उनमें एक है पत्नी रूप और दूसरा है माता का रूप। गुप्त जी को भी यही दो रूप अधिक भाये हैं। इन्हीं दो रूपों में नारी का स्नेह, तन्मयता, कर्त्तव्य-परायणता, और साधना आदि अपने वास्तविक रूप में मुखरित होती है।

नारी अर्द्धांगिनी रहने से पुरुष में रहने वाले दोषों का परिहार करती है और उसके पूरक के रूप में ही सामने आती है। वह अपने अधिकारों की इच्छा न करके कर्त्तव्यों की पूर्ति में ही अग्रसर होती दीख पड़ती है। इसी भावना से प्रेरित यशोधरा कहती है—

सखि, वे मुझसे कह कर जाते,

कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते।

क्यों कि—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में

प्रियतम को, प्राणों के पण में ,
हमीं भेज देती हैं रण में ,
क्षात्र-धर्म के नाते ;

नारी सदा पति का मन रखना चाहती है और सदा इसी दिशा में अग्रसर रहती है; परन्तु यह अवश्य चाहती है कि पति जो कुछ भी करे, वह उसके परामर्श से । यह भावना नवीन-युग की देन है। इसी ओर संकेत करती हुई गोपा कहती है—

मैंने मुख्य उसी को जाना, जो वे मन में लाते ।

फिर भला वह उनके शुभ कार्य में कैसे विघ्न डाल सकती थी। उसकी तो यही इच्छा है कि—

. जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से, दुखी न हों इस जन के दुख से ।

गुप्त जी ने यशोधरा में पति के प्रति श्रद्धा, प्रेम और त्याग की भावना का संचार किया है । यही त्याग उनके महान् व्यक्तित्व का द्योतक है । इसी भारतीय सांस्कृतिक महत्त्व की ओर यशोधरा राहुल को पति के लिए समर्पण-इंगित करती है ।

आज की नारी में आत्म-सम्मान की भावना का उदय पर्याप्त मात्रा में हो चुका है । उसे छोटी-छोटी बात पर ठेस लगती है। फिर भला यशोधरा पति के छिप कर चले जाने पर दुखी और व्यथित होकर रुद्ध कंठ से कह उठती है—

'सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात ,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात ॥
भला सखि तू ही बता कि यदि—
वे मुझसे कह कहकर आते ,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ।

उसे सबसे बड़ा दुख यह है कि इतने दिन साथ रह कर भी—

फिर भी क्या पूरा पहिचाना !'

शर्तिये—

मैंने मुक्ति उसी को जाना,
जो वे मन में लाने।

यशोधरा कहती है कि मैं किस प्रकार अपना मुख संसार को दिखाऊँगी—

सास ससुर पूछेंगे
तो उनसे क्या अभी कहूँगी मैं!
हा! गर्विता तुम्हारी
मौन रहूँगी सहूँगी मैं।

वह फिर कहती है कि यह तो सब होगा ही, परन्तु सबसे बड़ा दुख मुझे यह है कि क्या उन्होंने मुझे इन्द्रियासक्त समझ कर वह सारी बातें नहीं बतायीं, परन्तु फिर भी यदि उन्हें मुझ पर विश्वास न था तो अपने ऊपर तो विश्वास रहना ही चाहिए था—

वे कब थे विषयों के चेरे।

फिर सन्तों की भांति नारी-जाति का इस प्रकार त्रिन्न सांसारिक को शोभा नहीं देता। इस प्रकार इन पंक्तियों में यशोधरा में नवयुग दीक्षिता नारी के समान नर की उस भावना का विरोध किया है जिसके आधार पर प्रसव नारी को अपना खिलौना समझता है।

'मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान्, पुरुषों वेद' प्राप्त वाक्य के अनुसार सर्व प्रथम माता का कर्तव्य बालक को शिक्षा-दीक्षा देना है। पिता के अभाव में यशोधरा बालक राहुल को मनोवैज्ञानिक रीति से पूर्ण विकास करने के प्रयत्न में संलग्न दीख पड़ती है। माँ और बेटे किस मनोयोग से एक दूसरे की बात सुनते समझते एवं देखते हैं; उसे देखकर आश्चर्य होता है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार राहुल अपनी योग्यता का परिचय अपनी बाल्यावस्था में ही देने लगता है। शिष्टाचार की बातें वह अज्ञात रूप से कितनी सरलता से बालक राहुल को

हृदयंगम करा देती है। जब कभी अवसर आता है वह उसे शिक्षा देने में नहीं चूकती। आज के शिक्षा-शास्त्री बालकों को खेल द्वारा शिक्षा देने के पक्ष में हैं। यशोधरा राहुल को इसी प्रकार दीक्षित करने में संलग्न दीख पड़ती है। इस प्रकार से दीक्षित बालक स्वभावतः हमारा ध्यान आकर्षित कर लेता है। कभी-कभी तो उसकी प्रौढ़ उक्तियों को सुनकर आश्चर्य होता है। सूरदासजी अपने वात्सल्य के लिये सर्व-श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। कहा जाता है कि वात्सल्य का वह कोना-कोना झाँक आये हैं। उन्होंने बालक की शिशु-अवस्था का ही वर्णन किया है, बाल्यावस्था का नहीं। भक्त रहने से सूरदासजी में बाल रूप ही आकर्षित रहा है, परन्तु बालक की तोतली भाषा में किसे आनन्द नहीं आता। प्रायः जब कोई बालक अपने तर्क से चकित करने लगता हो तो दाँतों तले उँगली दबाना पड़ती है। बालक राहुल योग्य माता-पिता का होनहार बालक था। फिर यदि वह अपने तर्क से आश्चर्य-चकित करे तो इसमें शंका ही क्या है। विज्ञान के इस युग में नन्हे से बालक के हृदय में सीधी-सादी बातें नहीं रम सकतीं। सांसारिक जहाँ जीवन के प्रत्येक अंग का आनन्द उपभोग करना चाहता है वहाँ वैज्ञानिक उसके प्रत्येक अंग का विवेचन करना चाहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर कविवर गुप्तजी ने शिशु राहुल के साथ बालक राहुल की क्रिया-कलाओं का भी विवेचन किया है।

जन-तन्त्रात्मक राज्य में कोरी कला की भावना से कला का विकास असम्भव है। इस वैज्ञानिक युग में कला बिना उपयोगिता के आधार पर जन-साधारण तक नहीं पहुँच सकती। गुप्तजी इस भेद से भली भाँति परिचित थे। कलात्मकता के पुजारी रीति-कालीन कवियों से झुँझला कर गुप्तजी ने कहा था—

> करते रहेंगे पिष्ट-पोषण, कब तलक ये कवि-वरो;
> क्या कुच कटाक्षों पर कहो अब तो जीते जी मरो।

आप का कला के सम्बन्ध में स्पष्ट मत है—

> किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ।
> व्यक्त करती है कला ही यहाँ॥

इसी आधार को लेकर गुप्तजी ने गूढ़-चिन्तन, गम्भीर-मनन, प्रौढ़ विचार एवं युगधर्म की भावना को लेकर ही यशोधरा का काव्य-प्रासाद खड़ा किया है।

वैष्णव होते हुए भी कवि संकीर्णता, अनुदारता एवं साम्प्रदायिकता की भावना से परे हैं। तभी तो उन्होंने राम की वन्दना करते हुए कहा है—

> राम, तुम्हारे इसी धाम में,
> नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ।
> इसी देश में हमें जन्म दो,
> लो, प्रणाम हे नीरज-नाभ।
> धन्य हमारा भूमि-भार भी,
> जिससे तुम अवतार धरो,
> भुक्ति, मुक्ति माँगें क्या तुमसे,
> हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ!

राम और बुद्ध का एकीकरण वर्तमान सर्वधर्म समन्वय-भावना से प्रेरित ही दीख पड़ता है। महाभिनिष्क्रमण के समय गुप्तजी प्रार्थना करते हैं—

> हे राम, तुम्हारा वंश जात,
> सिद्धार्थ, तुम्हारी भाँति, तात,
> घर छोड़ चला यह आज रात;
> आशीष उसे दो लो प्रणाम,
> ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तजी की वैष्णवता पर युगधर्म की छाप है। इसीलिए उनकी कविता में जीवन की स्फूर्ति, ओज-

हित के अभाव की पूर्ति और सुखद-जीवन स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

किसी देश का साहित्य वहाँ की जनता की संचित वृत्तियों का प्रतिबिम्ब होता है। जब साहित्य समाज का दर्पण है तो किस प्रकार कवि तत्कालीन परिस्थितियों, मूल प्रवृत्तियों एवं सिद्धान्तों से प्रभावित हुए विना रह सकता है। यह वादों का युग है। गांधीवाद, समाजवाद, साम्यवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद अनेकों वादों के वितण्डे इस समय चल रहे हैं। परन्तु उन सबमें गांधीवाद सर्वोपरि स्थान ग्रहण कर रहा है। गुप्तजी तो गांधी के शिष्यों में से हैं। अतः उनका अमिट प्रभाव उन पर पड़ना ही चाहिए।

गाँधी जी मनुष्यत्व को ही देवत्व मानते थे। उनका विश्वास था कि अतुल त्याग के द्वारा ही मनुष्य देवता बन सकता है। यशोधरा में सत्य, अहिंसा, मानवतावाद, विश्व-कल्याण भावना, विश्व-बन्धुत्व, परहित, दया-क्षमा, आत्म-निग्रह, त्याग, तपस्या, संयम, सदाचार का वर्णन हमें इसी भावना के कारण मिलता है। उसमें वैयक्तिक-जीवन उन्नत करने, संसार में रहकर निष्काम कार्य करने, तृष्णा, कामना और मुक्ति भावना त्याग जीवन में अनुरक्त होने तथा काम, क्रोध- लोभ मोह से परे होकर जीवन-पथ पर अग्रसर रहने का उपदेश हमें मिलता है। विरक्ति की भावनाओं के प्रति विद्रोह नवीन युग की देन है, परन्तु आज का मनुष्य हमें कहता सुन पड़ता है—

'दुनियाँ का मजा ले लो दुनियाँ तुम्हारी है।'

इसी अनुरक्ति भावना की ध्वनि हमें यशोधरा में मिलती है। कामिनी और कांचन संसार में दो बड़ी बाधाएँ हैं जो मनुष्य को उठने नहीं देतीं।

अपने युग के प्रतिनिधि कवि ने लोकमान्य तिलक के कर्म-काण्ड का समर्थन कर पलायन-वादी मनोवृत्ति का कठोर विरोध किया है।

यशोधरा में शुद्धोदन और यशोधरा-संवाद आधुनिकता के द्योतक हैं। बहू और श्वसुर की परस्पर वार्ता प्राचीनता के उपासक ठीक नहीं समझते, किन्तु अब इसमें दोष नहीं समझा जाता।

इस प्रकार यशोधरा में सर्वत्र ही आधुनिकता छिटकी पड़ी है।

चरित्र-चित्रण

गुप्त जी ने यशोधरा में नारी के आदर्श-चरित्र को अंकित करने का प्रयास किया है। अपनी कल्पना से उसे सुसज्जित कर उन्होंने उसके चरित्र में अनेकों रंग भरे हैं। स्वाभिमान, त्याग, सन्तोष, सहनशीलत्व, श्रद्धा, वात्सल्य, पति-प्रेम आदि गुण उन्होंने बड़ी सफलता से अपने पात्रों में दर्शाये हैं।

यशोधरा में हमें मुख्यतः दो ही स्त्री पात्र प्राप्त होते हैं। महाप्रजावती और यशोधरा। कहीं-कहीं गोपा की सखियों की भी चर्चा काव्य में हुई है, किन्तु उनका विकास नहीं पाया जाता। अब हम महाप्रजावती तथा यशोधरा के चरित्रों पर दृष्टि डालेंगे।

महाप्रजावती

महाप्रजावती, महाराज शुद्धोदन की पत्नी तथा सिद्धार्थ की विमाता है। प्रायः यह देखा जाता है कि विमाता अपनी सौत के पुत्र के प्रति द्वेष-दृष्टि से देखती है। गुप्त जी ने युगों से प्रचलित नारी-अभिशाप को धोने के लिये यशोधरा में महाप्रजावती के चरित्र का आदर्श तथा विस्तृत अंकन किया है। वह एक आदर्श माता है। मायादेवी के निधन के पश्चात् वह सिद्धार्थ को सगे पुत्र की तरह पालती है। उसके लिये उसका पुत्र नन्द और सौत का पुत्र सिद्धार्थ दोनों एक समान हैं। वह अपने दूध का महत्व भली-भाँति जानती है। जिस समय सिद्धार्थ ने अपना सर्वस्व खोकर

वन-गमन किया, उस समय महाप्रजावती दुख से कितनी पागल हो उठती है, उसका अनुमान उसके निम्न शब्दों से किया जा सकता है—

मैंने दूध पिलाकर पाला।
सोती छोड़ गया पर मुझको वह मेरा मतवाला।
कहाँ न जाने वह भटकेगा,
किस झाड़ी में जा अटकेगा।
हाय! उसे काँटा खटकेगा
वह है भोला भाला।
मैंने दूध पिलाकर पाला।

वह अपने भाग्य को बुरा-भला कहने लग जाती है—

निकले भाग्य हमारे सूने,
वत्स, दे गया तू दुख दूने,
किया मुझे कैकेयी तूने,
हा, कलंक यह काला।
मैंने दूध पिलाकर पाला।

वह पुत्र-वियोग सहन करने में स्वयं ही असमर्थ पाती है—

कह, मैं कैसे इसे सहूँगी!
मर कर भी क्या बची रहूँगी!
जीजी से क्या हाय! कहूँगी!
जीने जी यह ज्वाला।
मैंने दूध पिलाकर पाला।

भारतीय वृद्धा माताएँ अपने पुत्र से कैसी-कैसी आशाएँ बांधती हैं। देखिए इसका सजीव चित्रण—

जरा आ गई यह क्षण-भर में,
बैठी हूँ मैं आज डगर में!
लकड़ी तो ऐसे अवसर में,

देता जा ओ लाला!
मैंने दूध पिला कर पाला!

इस प्रकार विमाता के चरित्र को गुप्त जी ने आदर्श-रूप प्रदान किया है। नारी का यह भी एक चरित्र अंग था, जिस पर वे 'साकेत' में पूरी तरह से प्रकाश न डाल पाये थे। ऐसा भासित होता है कि उसी अभाव की पूर्ति गुप्तजी ने महाप्रजावती के चरित्र द्वारा की है।

पत्नी यशोधरा

गुप्तजी ने यशोधरा के माता एवं पत्नी के दो ही रूपों को मुखरित किया है। वह मानिनी नायिका है। उसमें आत्म-सम्मान की भावना चरमसीमा को प्राप्त हुई है। उसका कथन है कि—

सिद्धि—हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात;
पर चोर, चोरी गये—यही बड़ा व्याघात॥

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

यह ठीक है कि—

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

तब—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,

हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते,
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

तो वह शंका करना कि मैं उनके महाभिनिष्क्रमण के समक्ष बाधा रूप में आती, मूर्खता है।

यशोधरा साध्वी एवं पति-भक्ता नारी है। इसी से वह वर्तमान कष्टों को चुनौती देती हुई कहती है—

यदि मैं पतिव्रता, तो,
तो मुझको कौन भार-भय भारी।

वह सिद्धार्थ को सन्तुष्ट करने के प्रयत्न में सदा संलग्न रहती है। उसने स्वयं को उसमें आत्मसात कर दिया था। जो वह कहते थे, यशोधरा वही करती थी, किन्तु उनके द्वारा अनायास त्यागे जाने पर वह स्तम्भित रह गई। उसे आश्चर्य हुआ कि यह सब हुआ ही क्यों! उसने सोचा, सम्भवत: वे मुझे वासना की खान समझ कर त्याग गये हों। वह कहती है—

अयि मेरे अर्धांगि-भाव,
क्या विषय-मात्र थे तेरे।
हा! अपने अंचल में किसने
ये अंगार बिखेरे!

यशोधरा सिद्धार्थ को सम्बोधित कर पुन: कहती है कि हे प्रभु! कभी तुमने यह भी सोचा कि जिस वस्तु से तुम्हें घृणा थी, और यदि वह घृणित वस्तु मेरे पास थी, तो वह भी ईश्वरीय देन थी। अत: फिर क्या मुझे इस प्रकार सुप्तावस्था में छोड़कर चला जाना उचित था! क्या हे देव, क्या तुमने कभी इस बात पर भी विचार किया कि तुम्हारे इस प्रकार गृह-त्याग करने पर सास-ससुर मेरे सम्बन्ध में कैसी भावनाएँ बना लेंगी? खैर, न सोचो तो न सही, तुम्हारी अनुपस्थिति में अब तुमसे क्या कहूँ! मुझ पर जो भी बीतेगा वह—

मौन रहूँगी सहूँगी मैं।

किन्तु फिर भी एक बात अवश्य कहे देती हूँ कि—

बिदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है;
हंत! अन्त में यह अभिनय भी तुमने मुझे दिया है॥

वह तो विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उनको बिदा देकर एक आदर्श उपस्थित करना चाहती थी, परन्तु दुर्भाग्य ने यह शुभावसर न आने दिया। यदि—

देती उन्हें बिदा मैं गाकर,
भार मेलती गौरव पाकर,
यह निश्वास न उठता हा कर!
बनता मेरा राग न रोग!
मिला न हा! इतना भी योग।

यदि उसे यह योग भी मिल गया होता—

मैं हँस लेती तुम्हें वियोग!

यदि उनको 'पहुँचाती मैं सजाकर' तो वियोग सरल हो गया होता, किन्तु वह गया, 'वह गए स्वयं मुझे लजाकर।' फिर भी—

लूँगी कैसे? वाद्य बजाकर
लेंगे अब उनको सब लोग।

जिस समय राज्य-परिवार के सब लोग सिद्धार्थ के कपिल-वस्तु में पधारने पर स्वागत के हेतु जाने को उद्यत हुए, उस समय जब शुद्धोदन कहते हैं—

अब क्यों विलम्ब किया जाये बेटी,
शीघ्र तू प्रस्तुत हो।

यह मानिनी स्पष्ट उत्तर देती है—

किन्तु तात! उनका निदेश बिना पाये मैं,
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी!

इस उत्तर से महाप्रजावती आग-बबूला होकर कहती है—

> गोपे, हम अबला जनों के लिए इतना
> तेज-नहीं, दर्प-नहीं, साहस क्या ठीक है!

जब यह गोपा से सिद्धार्थ से मिलने में बाधा पूछती है, तो उसका नारीत्व आहत हो उठता और वह उत्तेजित हो कह उठती है—

> बाधा तो यही है, मुझे बाधा नहीं कोई भी।
> विघ्न भी यही है, जहाँ जाने से जगत में
> कोई मुझे रोक नहीं सकता है धर्म में,
> फिर भी जहाँ मैं, आप इच्छा रहते हुए
> जाने नहीं पाती! यदि पाती तो कभी यहाँ
> बैठी रहती मैं! छान डालती धरित्री को
> सिंहनी सी काननों में, योगिनी-सी शैलों में,
> शफरी सी जल में, विहंगिनी-सी व्योम में,
> जाती तभी और उन्हें खोज कर लाती मैं!
> मेरा सुधा-सिन्धु मेरे सामने ही आज तो
> लहरा रहा है, किन्तु पार पर मैं यहीं
> प्यासी मरती हूँ, हाय! इतना अभाग्य भी
> भव में किसी का हुआ! कोई कहीं जाता है
> तो मुझे बता दे हा! बता दे हा।

इतना कहकर यशोधरा मूर्च्छित हो जाती है। शुद्धोदन भी उसके मन की वेदना नहीं जानना चाहते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि—

> बेटी, अब मैं भी तुझे रोक नहीं सकूँगा।
> मेरे अश्रु लेकर ही कुल-कुश छोड़ेगा
> मेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी अपेक्षा है!
> रोक-टोक गौतम भी कह नहीं सकतो!
> जाओ, जहाँ कोई पग निर्भय से हो चलो—

झूठे सब नाते सही तू तो जीव मात्र का,
जीव-दया-भाव से ही हमको उबार जा।

कितनी दया, कितनी ममता, कितना क्रोध एवं उलहना इन पंक्तियों में निहित है। गोपा ने अपनी टेक रखी और स्वयं अमिताभ को आना ही पड़ा। बालक राहुल बुद्धदेव को आता देख माता के मान की ओर संकेत कर कहता है—

अम्ब आ रहे हैं ये तात,
शान्त हों अब सारे उत्पात।
ले, आ अब तो रह गई 'गर्विणी गोपा' की लाज,
जितना रोना हो रो ले इनके आगे आज।

बालक बड़े समझदार होते हैं। वह बहुत शीघ्र ही मानव मनोवृत्तियों का विश्लेषण कर लेते हैं और तत्व तक पहुँच जाते हैं। फिर यशोधरा की मानिनी वृत्ति को वह क्यों न परख लेता जो उसके जीवन के अंग-प्रत्यंग में व्याप्त थी।

अन्त में भगवान् बुद्ध स्वयं दर्शन देते हुए कहते हैं—

मानिनि मान तजो, लो रही तुम्हारी बान,
दानिनि आया स्वयं द्वार पर यह तव-तत्रभवान।
सिद्धार्थ-शाक्य की निर्दयता दिय जान,
मैत्री-करुणा-पूर्ण आज यह शुद्ध बुद्ध भगवान।

अनुरागिनी गोपा कृत-कृत्य हो कहती है—

यशोधरा क्या कहे और अब, रहो वहीं भी धाम।

इस प्रकार गोपा ने सिद्ध कर दिया कि यदि बुद्धजी [illegible] चाहें तो वह उनके मार्ग में बाधा बन कर कभी न उपस्थित होती [illegible] एक आदर्श पत्नी के मन न [illegible] की [illegible] [illegible] में [illegible] फिर वह उनकी इच्छा के विरुद्ध एक [illegible] न करती, वरन् उनकी प्रत्येक आज्ञा के पालन में तत्पर रहती [illegible] था कि अब गुरुदेव ने युवकों को सिद्धार्थ की [illegible]

के निमित्त भेजने का प्रस्ताव किया तो वह स्पष्ट मना कर कहती है कि—

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
सिद्धि-लाभ करके शीघ्र लौटें वे वन से।

यशोधरा ने वास्तव में बुद्ध देव को आत्म-समर्पण कर, उनके दुख में दुख और उनके सुख में सुख समझने की बान डाल ली थी। वह कहती है—

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझ में मेरा पानी;
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ, में भरसक देखूँ, बस हे दानी,
कहाँ तुम्हारी गुण-गाथा में मेरी करुण कहानी!

यशोधरा निरन्तर ही बुद्धजी की स्मृति में छटपटाती और सोचती है कि जब वे आएँगे, तो यह उलहना दूँगी, वह बात कहूँगी तथा इस प्रकार मान करूँगी किन्तु अन्त में उसकी ये समस्त भावनाएँ विस्मृति के अंक में बैठ जाती हैं। वह कहती है—

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यों भागे!
पाकर भी अपना धन आगे,
भूली—सी मैं मान,
पधारो, भव भव के भगवान।

अन्त में विनम्रताकी मूर्ति बन कर वह कहती है—

नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी,
अपनायी मुझ—सी लघु नारी,
होकर महा महान।

भला जो नारी—

'स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल फूल में फूटे।'

की भावना रखती हो वह विनय, विनम्रता, शान्ति, सन्तोष एवं शिष्टाचार की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही होगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि यशोधरा और सिद्धार्थ दोनों एक दूसरे को समान विचारी समझते थे। छोटे बड़े और नीच का प्रश्न न था। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये थे। यही कारण है कि पुनर्मिलन पर दोनों एक दूसरे से क्षमा याचना करते हैं। प्रेमाधिक्य में एक दूसरे को बुरा-भला नहीं कहते।

माता यशोधरा

यशोधरा आदर्श जननी थी और राहुल पर अभिमान रखती थी। दुःख के एकाकी इस साथी के लिए वह जो न करे वह थोड़ा है। यथा—

> मेरी मलिन गुदड़ी में है राहुल—सा लाल!
> क्या है अंजन-अंगराग, अब मिलो विभूति विशाल!

वह परमात्मा से प्रार्थना करती है—

> देव बनाए रखे!
> राहुल, बेटा, विचित्र तेरी क्रीड़ा!
> तनिक बहल जाती है,
> उसमें मेरी अधीर पीड़ा व्रीड़ा।

उसकी कामना है कि—

> मेरा शिशु-संसार वह, दूध पिये, परिपुष्ट हो,
> पानी के ही पात्र तुम, प्रभु रुष्ट या तुष्ट हो।

माता अपने बालक को हँसते देखना चाहती है। अतः यशोधरा इच्छा करती है और कहती है—

बेटा, मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को,
हँस तू, है सब कुछ होने को।

यशोधरा अपना मन बहलाने एवं बालक को प्रसन्न करने के लिए भरसक प्रयास करती है। कभी-कभी वह उसके साथ खिलवाड़ करती है—

कैसे धाऊँ पाऊँ, तुझको हार गई मैं दैया।

यशोधरा बालक राहुल की जिज्ञासाओं को शांत करने के लिए कभी कहानी कहती है, कभी सात्विक उपदेश देकर भावनाएँ शांत करती है तो कभी राहुल को शिष्टता, विनम्रता तथा सदाचार का पाठ पढ़ाने में प्रयत्नशील दीख पड़ती है। एक दिन बालक माता को निरंतर दुखी देखकर पिता के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहने लगा——

अम्ब, पिता आयेंगे तो उनसे न बोलूँगा।
और संग उनके न खेलूँगा, न डोलूँगा।

तब यशोधरा पूछती है—

बेटा क्यों !

तो वह कहता है—

गये वे अम्ब, क्यों कुछ बिना कहे !
हम सबने ये दुख जिससे यहाँ सहे।

इस भय से कहीं राहुल अविनय न कर बैठे, यशोधरा कहती है—

अविनय होगा किन्तु बेटा, क्या न इससे !

वह निरंतर पुत्र को अच्छी बातों के प्रति प्रोत्साहित करती है—"बेटा, पुरुषों के लिए स्वावलम्बी होना उचित है। दूसरों का भार बनना अपने पौरुष का अनादर करना है। यूँ तो सबका भार भगवान् पर है, परंतु मेरे लिये तो स्वामी ही भगवान् हैं और तेरे लिए गुरुजन ही।"

यशोधरा में कवि ने आदर्श नारी के वांछनीय गुणों का सुन्दर वर्णन कर आधुनिक अर्थ वादी वासना से पराभूत नारी को सुन्दर उपदेश दिया है और उसे कर्म-काण्ड में प्रवृत्ति रहने का भी उपदेश किया है। अतः स्वीकार करना पड़ता है कि यशोधरा का चरित्र एक अमर चरित्र है। क्योंकि वह नारी-मात्र के भावों का प्रतीक है। विरह तथा निराशा में भी वह अपना कर्तव्य नहीं भूलती। राहुल का भार उस पर है, किन्तु राहुल को सदा हँसा कर वह स्वयं भी प्रसन्न रहती है। यशोधरा अपने विश्वासों के प्रति अडिग है। वह मूर्ख नहीं। ज्ञान चक्षु उसके भी हैं। इसलिए व्यक्तिगत दुःख में वह जगत का सुख अनुभव करती है। अन्त में स्वयं भी जन-हित की भावना से प्रेरित होकर संघ की शरण में चली जाती है।

राहुल

राहुल एक वर्ष के लगभग था, जब सिद्धार्थ ने घर छोड़कर वन-गमन किया था। राहुल के दर्शन सबसे पहले हमें उस रूप में होते हैं जब यशोधरा कहती है—

> चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!
> रोता है, अब किसके आगे!
> तुझे देख पाते वे रोता,
> मुझे छोड़ जाते क्यों सोता!
> अब क्या होगा? तब कुछ होता!

इसके पश्चात् वह विकास पाता है। माता सदा देवी-देवताओं की मनौती करती है और कहती है कि मैं यह सारा दुःख तेरी ही ओट में सहन कर रही हूँ। यथा—

> देव बनाए रखें,
> राहुल, बेटा, निश्चित तेरी क्रीड़ा,

तनिक बहल जाती है
उसमें मेरी अधीर पीड़ा-क्रीड़ा ।

कवि ने यहाँ अलक्षित रूप से संकेत किया है कि यशोधरा की आगे चलने वाली सम्पूर्ण कथा राहुल के आधार पर ही अवलम्बित है। अन्यथा सम्भव था कि यशोधरा बुद्ध जी के आगमन से पूर्व ही राम-शरण हो जाती।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् वाली कथा की धुरी बालक राहुल ही है। इस बात को यशोधरा ने स्वयं स्वीकार किया है—

ओ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों 'अम्ब-अम्ब' कहता है !

वह फिर कहती है—

किलक अरे, मैं नेक निहारूँ,
इन दाँतों पर मोती वारूँ ।

धीरे-धीरे वह बोलने लग जाता है। एक दिन अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह कहने लगता है—

"ओ माँ, आँगन में फिरता था
कोई मेरे संग लगा ;
आया ज्यों ही मैं अलिन्द में
छिपा न जाने कहाँ भगा ।

माता समझ गई कि शिशु भयभीत हो गया और कहने लगी—

बेटा, भीत न होना, वह था
तेरा ही प्रतिबिम्ब सगा ।

धीरे-धीरे बालक बड़ा होने लगा और माता के साथ खिलवाड़ करने लगा। माता भी शिशु को प्रसन्न करने के लिए लोरियाँ और [illegible] देती है—

अरे, बाल-गोपाल कन्हैया,
राहुल, राजा भैया ।

कैसे पाऊँ, पाऊँ तुमको हार गई मैं दैया,
सद दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन-सी शैय्या,

अब राहुल काफी चैतन्य हो गया और माता का दुखी हृदय अपनी विनोद-मयी बातों एवं प्रश्नों से बहलाये रहता है। एक बार बालक राहुल प्रश्न करता है—

"अम्ब, तात कब आयेंगे !"

माता उत्तर देती है—

"धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायेंगे,
मुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यों न अपनायेंगे;
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।

राहुल फिर प्रश्न करता है—

माँ तब पिता-पुत्र हम दोनों संग संग जायेंगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर-विचर कर खायेंगे !
पर अपने सूने-सूने दिन तुझको कैसे भायेंगे !"

इस कल्पना पर यशोधरा चकित हो उठती है और विस्मय से पूछती है—

हा राहुल ! क्या ऐसे दिन भी हम धरती पर पायेंगे।

कितनी विकलता एवं भय मातृ-हृदय का इसमें निहित है। माता कहती है—

देखूँगी बेटा, मैं, जो भी भाग्य मुझे दिखलायेंगे,
तो भी तेरे मुख के ऊपर मेरे दुख न छायेंगे।

अन्तिम पंक्ति में यशोधरा का हृदय [illegible] रहा है। जब [illegible] पति के मार्ग की ही बाधा न बनी, तो बालक के सुख में [illegible] कैसे बन सकती है ! भारतीय नारी के इस महान् त्याग की [illegible] कविवर गुप्तजी ने यशोधरा में [illegible] की है।

अब बालक राहुल समझदार हुआ। शिक्षा [illegible] का समय [illegible] [illegible]। उसे शिक्षा देने का समय आ गया। माता ने अपना [illegible]

दायित्व समझा। क्यों न समझती? पिता तो घर थे ही नहीं, जो उचित व्यवस्था करते। अतः वह स्वयं उसे यथावसर दीक्षा देने लगी। एक बार बातों-बातों में ही बालक राहुल पूछ बैठा कि हे माँ, जब जगत्प्राण-वायु सर्व-व्यापक है तो—

क्यों अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं?

यशोधरा प्रश्न का समाधान करती है—

निज-ध्वनि फैल कर लीन होती है यहीं।

राहुल पुनः पूछता है—

और उनको भी वहीं! फिर क्या बड़ाई है?

यशोधरा सकपकाकर उत्तर देती है—

सबने शरीर शक्ति मित की ही पाई है।
मन ही के माप से मनुष्य बड़ा-छोटा है,
साधन के कारण ही तन की महत्ता है,
किन्तु शुद्ध मन की निरुद्ध कहाँ सत्ता है?
करते हैं साधन विजन में वे तन से,
किन्तु सिद्धि—लाभ होगा मन से, मनन से।
देख निज, नेत्र—कर्ण जा पाते नहीं वहाँ,
सूक्ष्म मन किन्तु दौड़ जाता है कहाँ-कहाँ!
वत्स यही मन जब निश्चलता पाता है,
आकर इसी में तब सत्य समा जाता है।

किन्तु राहुल फिर प्रश्न करने लगता है—

तो मन ही मुख्य है माँ!

यशोधरा कहती है—

बेटा, स्वस्थ देह भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राहुल की प्रश्न-शक्ति बड़ी तार्किक एवं गम्भीर है।

बालक की कल्पना शक्ति में संबल आया और वह कल्पना करने

कैसे धाऊँ, पाऊँ तुमको हार गई मैं दैया,
सद्द दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन-सी शैय्या,

अब राहुल काफी चैतन्य हो गया और माता का दुःख
अपनी विनोद-मयी बातों एवं प्रश्नों से बहलाये रहता है। एक
बालक राहुल प्रश्न करता है—

"अम्ब, तात कब आयेंगे !"

माता उत्तर देती है—

"धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायेंगे,
तुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यों न अपनायेंगे;
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।

राहुल फिर प्रश्न करता है—

माँ तब पिता-पुत्र हम दोनों संग संग जायेंगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर-विचर कर खायेंगे !
पर अपने दूने-सूने दिन तुझको कैसे भायेंगे !"

इस कल्पना पर यशोधरा चकित हो उठती है और विस्मय
से पूछती है—

हा राहुल ! क्या वैसे दिन भी इस धरती पर आयेंगे।

कितनी विकलता एवं भय मातृ-हृदय का इसमें निहित है।
माता कहती है—

देखूँगी बेटा, मैं, जो भी भाग्य मुझे दिखलायेंगे,
तो भी तेरे सुख के ऊपर मेरे दुख न छायेंगे।

अन्तिम पंक्ति में यशोधरा का हृदय खुल गया है। जब
पति के मार्ग की ही बाधा न बनी, तो बालक के सुख में कैसे
बन सकती है ! भारतीय नारी के इस महान् त्याग की झाँकी
कविवर गुप्तजी ने यशोधरा में अंकित की है।

अब बालक राहुल समझदार हुआ। शिक्षा का समय आ
गया। उसे शिक्षा देने का समय आ गया। माता ने बालक

कैसे धाऊँ, पाऊँ तुमको हार गई मैं दैया,
सद्‌ दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन-सी शैय्या,

अब राहुल काफी चैतन्य हो गया और माता का दुःख अपनी विनोद-मयी बातों एवं प्रश्नों से बहलाये रहता है। [illegible]

बालक राहुल प्रश्न करता है—

"अम्ब, तात कब आयेंगे !"

माता उत्तर देती है—

"धीरज धर बेटा, अवसर हम उन्हें एक दिन पायेंगे,
मुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यों न अपनायेंगे;
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।

राहुल फिर प्रश्न करता है—

माँ तब पिता-पुत्र हम दोनों संग संग जायेंगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर-विचर कर लायेंगे।
पर अपने सूने-सूने दिन तुमको कैसे भायेंगे !"

इस कल्पना पर यशोधरा चकित हो उठती है और फिर से पूछती है—

हा राहुल ! क्या वैसे दिन भी इस धरती पर आयेंगे।
कितनी विकलता एवं भय मातृ-हृदय का इसमें निहित।

फिर कहती है—

देखूँगी बेटा, मैं, जो भी भाग्य मुझे दिखलायेंगे,
तो भी तेरे सुख के ऊपर मेरे दुख न छायेंगे।

अन्तिम पंक्ति में यशोधरा का हृदय खुला रखा है। जब [illegible] के [illegible] की ही [illegible] न बनी, तो बालक के सुख में [illegible] कर सकती है! भारतीय नारी के इस महान् त्याग की [illegible] कविवर गुप्तजी ने यशोधरा में सुरक्षित की है।

अब बालक राहुल समझदार हुआ। सिद्धार्थ [illegible] के लिए देने का समय आ गया।

दायित्व समझा। क्यों न समझती? पिता तो घर में ही नहीं, जो उचित व्यवस्था करते। अतः वह स्वयं उसे यथावसर दीक्षा देने लगी। एक बार बातों-बातों में ही बालक राहुल पूछ बैठा कि हे माँ, जब जगत्प्राण-वायु सर्व-व्यापक है तो---

क्यों अपनी बात वह ले जाता वहाँ नहीं!

यशोधरा प्रश्न का समाधान करती है—

निज-ध्वनि फैल कर लीन होती है यहीं।

राहुल पुनः पूछता है—

और उनकी भी वहीं! फिर क्या बड़ाई है!

यशोधरा सकपकाकर उत्तर देती है—

सबने शरीर शक्ति मित की ही पाई है,
मन ही के माप से मनुष्य बड़ा-छोटा है,
साधन के कारण ही तन की महत्ता है,
किन्तु शुद्ध मन की निरुद्ध कहाँ सत्ता है!
करते हैं साधन विजन में वे तन से,
किन्तु सिद्धि---लाभ होगा मन से, मनन से।
देख निज, नेत्र---कर्ण जा पाते नहीं वहाँ,
सूक्ष्म मन किन्तु दौड़ जाता है कहाँ-कहाँ!
वत्स यही मन जब निश्चलता पाता है,
आकर इसी में तब सत्य समा जाता है।

किन्तु राहुल फिर प्रश्न करने लगता है—

तो मन ही मुख्य है माँ!

यशोधरा कहती है—

बेटा, स्वस्थ्य देह भी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राहुल की प्रश्न-शक्ति बड़ी तार्किक एवं गम्भीर है।

बालक की कल्पना शक्ति में संबल आया और वह कल्पना करने

लगा कि यदि पक्षी के समान पर लगा कर उड़ सकूँ तो झट से पिता जी को बुला लाऊँ। इस प्रकार माता, बाबा और दादी तथा परिवार के उस कष्ट का निवारण कर दूँ, जो पिता जी की अनुपस्थिति से सबको हो रहा है। अनायास उसे हनुमानजी का स्मरण हो आता है कि वह तो बिना पंखों के ही उड़े थे। अतः अपनी माँ से पूछने लगा—

क्योंकर उड़े वे भला !

ओहो ! हनुमान उड़े जैसे माँ !

माता उत्तर देती है—

बेटा, योग बल से।

राहुल फिर कह उठता है—

मैं भी योग-साधन करूँगा अम्ब, कल से।

कभी-कभी यह बालकों के समान आग्रह करता है—

माँ कह एक कहानी।

राहुल बड़ा तार्किक बालक है। कभी-कभी वह दार्शनिकता की बातें करने लगता है। एक बार वह कहता है—

"माँ, मैं तो एक-दो बार सुनकर ही कोई बात नहीं भूलता। चाहे तू मेरी परीक्षा ले ले।"

यशोधरा कहती है—

"तेरे पूर्वजन्म के संस्कार हैं। तू उस जन्म में पंडित रहा होगा। इसी लिये इस जन्म में तुझे सहज ही विद्या प्राप्त हो रही है।"

तब राहुल बड़े आश्चर्य से कहता है—

"ऐसी बात है"

यशोधरा उत्तर देती है—

"हाँ बेटा, इस जन्म के अच्छे कर्म उस जन्म में लाभ देते हैं।"

राहुल दूसरा प्रश्न पूछता है—

और बुरे !

माता प्रश्न का समाधान करती हुई कहती है—

"वे भी"

इसके पश्चात् राहुल कितनी मार्मिकता से अन्य प्रश्न उसके सम्मुख रख कर कहता है—

"तो एक बार बुरे कर्म करने से उनसे पिंड छूटना कठिन है!"

यशोधरा 'यही बात है' कहकर बेटे की शंका दूर करती है।

इस पर राहुल कितनी गम्भीरता से मनन कर कहता है—

"तो मैं आचार्य-देव से कहकर बुरे कर्मों की एक सूची बनवा लूँगा, जिससे उनसे बचता रहूँ।"

इस कथन पर माता अपना मत देती है—

"अच्छा तो यह होगा कि तू अच्छे कर्मों की भी एक सूची बनवा ले।"

माता के कथन से सहमत न होकर राहुल कहता है—

"अच्छी बातें तो वे पढ़ाते ही हैं।"

माता फिर उपदेश करती है—

"तो उन्हीं को स्मरण रखना चाहिए। बुरी बातों का स्मरण भी बुरा।"

इस उपदेश को सुनकर राहुल बड़ी गम्भीरता से कहता है—

"तो एक ओर मुझे अज्ञ भी बनना पड़ेगा। वैसे आज असमर्थ बनना पड़ा है।"

यशोधरा प्रश्न करती है—

'कैसे?'

राहुल उत्तर देता है—

"आज व्यायाम-शाला में कूदने के लिए बढ़ाकर एक नई सीमा निर्धारित की गई। मेरे साथियों में से कोई भी वहाँ तक नहीं उड़ सका। मैं कूद सकता था, परन्तु सबका मन रखने के लिए समर्थ होते हुए भी मैं वहाँ तक नहीं गया। कल ही मैंने पढ़ा था—

'आत्मना प्रतिकूलानि न समाचरेत्'।"

अतः उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राहुल बुद्धिमान्, धर्मज्ञ एवं गम्भीर बालक है।

गुप्तजी ने यशोधरा में नन्द, सिद्धार्थ एवं शुद्धोदन के चरित्रों पर कुछ ऐसा प्रकाश डाला है जिसके कारण हमें उन पर गम्भीरता-पूर्वक एक दृष्टि डालना आवश्यक है। अब क्रमशः प्रत्येक के चरित्र को देखिए।

नन्द

नन्द का चरित्र-विकास केवल नाम मात्र को ही हुआ है। वह सिद्धार्थ का सौतेला भाई है। सिद्धार्थ के पश्चात् राज्याधिकारी वही है। नन्द के चरित्र से ऐसा ज्ञात पड़ता है कि कवि ने चिरकाल से प्रचलित अधिकार के प्रश्न पर भाई-भाई में होने वाले झगड़ों को शान्त कराने के लिए उनके चरित्र की सृष्टि की है या यें कहिए कि कवि 'भरत सम भाई' का आदर्श नन्द में देखना चाहता है। सिद्धार्थ के वन चले जाने पर नन्द सोचते हैं—

> आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!
> राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार!
> छोड़ा मेरे लिए हाय! यह तुमने आज उदार!
> कैसे भार सहेगा सम्प्रति राहुल है सुकुमार!
> आर्य, यह मुझ पर अत्याचार!

और इसके पश्चात् वह उनकी 'थाती' राहुल पर ही सब कुछ निछावर कर देने का विचार करता है।

सिद्धार्थ

यशोधरा में सिद्धार्थ का चरित्र पुरुष-पात्रों में प्रधान है, परन्तु कवि ने उसका भी कोई विशेष विकास नहीं दिखाया है। केवल विरक्त भावना तथा ज्ञान प्राप्ति ही चित्रित करके उनके चरित्र को समाप्त कर दिया है। कहीं-कहीं बीच में यशोधरा आदि के कथन उनके चरित्र के कुछ बिखरे कण दीख जाते हैं।

महाप्रजावती के शब्दों से ज्ञात होता है कि मायादेवी के अवसान के पश्चात् उसने ही सिद्धार्थ का लालन-पालन किया। विमाता के दूध से पोषित होने पर सिद्धार्थ पर दूध का यह ऋण चढ़ गया। शस्त्र और शास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उनका विवाह गोपा से सम्पन्न हुआ। उनके उस समय के चरित्र पर गोपा की निम्न पंक्तियाँ प्रकाश डालती हैं—

> देख कराल काल-सा जिसको काँप उठे सब भय से।
> गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन, नागदत्त जिस हय से।
> वह तुरंग पालित—कुरंग-सा नत हो गया विनय से,
> क्यों न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से?
> निकला वहाँ कौन उन-जैसा प्रबल पराक्रम कारी?
>
> ×　　　　×　　　　×
>
> सभी सुन्दरी बालाओं में मुझे उन्हीं ने माना।
> सबने मेरा भाग्य सराहा, सबने रूप बखाना।
> खेद, किसी ने उन्हें न फिर भी ठीक ठीक पहचाना।
>
> ×　　　　×　　　　×

सिद्धार्थ अपनी युवावस्था में बड़े पराक्रमी तथा वीर जान पड़ते हैं। यशोधरा-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, शस्त्र-परीक्षा में सफलता प्राप्त कर, वे उसे अपनी पत्नी-रूप में स्वीकार करते हैं।

यह विलास-मयी जीवन उनके साथ अधिक समय तक नहीं

व्यतीत हो पाता। विरक्ति की भावना, जो कि उनके हृदय के कोने-कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थी, फिर से शनैःशनैः जागरूक होती है। यशोधरा पूछती है—

'क्यों जी, प्राण-वल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं?' तो वे हँसकर उत्तर देते हैं—

'योगेश्वर क्यों न होऊँ, गोपेश्वर नामी मैं!'

इन पंक्तियों का प्रसंग यद्यपि पति-पत्नी के व्यंग-विनोद से है, किन्तु उस समय इसका वास्तविक रहस्य प्रकट होता है, जब वे यह सोचते दृष्टिगोचर होते हैं—

देखी मैंने आज जरा।

हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा!
हाय! मिलेगा मिट्टी में यह वर्ण-सुवर्ण खरा!
सूख जायेगा मेरा उपवन, जो है आज हरा!
सौ-सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक्! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा!
रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा!
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा!

और फिर उनके हृदय में विरक्ति की प्रबल लहरें उठती हैं—

मरने को जग जीता है।
रिसता है जो रन्ध्र-पूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नहीं, कब कितना
समय कहाँ आ बीता है!
विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है!
कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मनचीता है।

खोजूँगा मैं उसको, जिसके;
विना यहाँ सब तीता है।

आधी रात के समय, एक दिन संन्यासी बनने की इच्छा से वशीभूत होकर सिद्धार्थ कन्थक नामक अश्व पर सवार होकर, छन्दक के साथ वन की ओर यह कहते हुए प्रस्थान करते हैं—

रख अब अपना यह स्वप्न-जाल,
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल—
निज राज-पाट, धन, धरिणि, धाम।
औ क्षण-भंगुर भव, राम राम।

सिद्धार्थ को चिन्ता होती है, कहीं कोई यह न समझे कि वे गृहस्थी का भार देखकर भाग रहे हैं, इस लिए वे कहते हैं—

क्या भाग रहा हूँ भार देख!
तू मेरी ओर निहार देख!
मैं त्याग चला निस्सार देख!
अटकेगा मेरा कौन काम!
औ क्षण-भंगुर भव राम राम!

उनका वन की ओर प्रस्थान करना माता-पिता को ही नहीं, प्रजाजनों को भी शीलता है। प्रजा का इस प्रकार अपने राजकुमार के लिए व्याकुल होना, सिद्धार्थ के आदर्श चरित्र का परिचायक है। प्रजा-जन उसके लिए व्याकुल होकर कह उठते हैं—

गए आज सिद्धार्थ हमारे,
जो थे इन प्राणों के प्यारे,
भार मात्र कोई अब धारे,
राज्य धूलि में लोटा।
भाई रे! हम प्रजाजनों का हाय! भाग्य ही खोटा।

छन्दक लौट कर उनके सन्यास-ग्रहण कर लेने की सूचना देता है

हाय ! काट डाले वे केश !

चिकने, चुपड़े, कोमल कन्चे, सच्चे सुरभि-निवेश।

छन्दक मे उन्होंने आशा का सन्देश भी भेजा है—

करे न कोई मेरी चिन्ता नहीं मुझे भव-लेश।

सिद्धि-लाभ करके मैं फिर भी लौटूँगा निज देश।

सह सकता मैं नहीं किसी का जन्म-जन्म का क्लेश।

तुम अपने ही जीव मात्र का हित मेरा उद्देश।

अन्त में उनका यह सन्देश सफल होता है। तप भंग करने के लिए अप्सराएँ उपस्थित होती हैं, पर वे निश्चित भाव से ध्यान-मग्न रहकर सिद्धि-लाभ करते हैं और जन-कल्याणार्थ के उपदेश देते हुए निज देश को लौटते हैं। जब राहुल पूछता है कि हे पिता ! तुम्हें तो सिद्धि मिल गई, परन्तु इसे यशोधरा को क्या लाभ हुआ, तो वे उत्तर देते हैं—

वत्स ! इष्ट क्या और इसे अब, आया जब अमिताभ !

प्रथम ही पाया तुमसा जात !

शान्त हों अब सारे उत्पात।

वचनानुसार यशोधरा के द्वार पर सिद्धार्थ लौट कर आते हैं, परन्तु अब वे गौतम न होकर भगवान् बुद्ध हैं। यशोधरा के ही नहीं अब वे सब के हो गए हैं। वे सबकी भिक्षा स्वीकार करते हुए यशोधरा के समीप आते हैं और सबकी भिक्षा स्वीकार करना यशोधरा अनुचित समझती है, तब वे उसे समझाते हैं—

दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तब-तत्र भवान।

किसकी भिक्षा न लूँ, कहो मैं ! मुझको सभी समान।

अपनाने के योग्य यही तो जो है आर्त्त-अजान।

अन्त में सिद्धार्थ का चरित्र इतने उच्च-स्तर पर चढ़ जाता है कि वे सिद्धार्थ से भगवान् बुद्ध बनकर यशोधरा और राहुल को भी संघ की शरण में ले लेते हैं। यथा—

बुद्धं शरणं धर्मं शरणं,
संघं शरणम् गच्छामिऽ ॥

शुद्धोदन

महाराज शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा हैं, सिद्धार्थ के पिता हैं। पुत्र-वियोग से व्यथित वे हमारे सामने आते हैं। उन्होंने सिद्धार्थ को सांसारिक बन्धनों में फँसने का भरसक प्रयास किया, किन्तु वह सब निष्फल रहा। सिद्धार्थ के वन चले जाने पर वे दुखित होकर कहते हैं—

मैंने उसके अर्थ यह, रूपक रचा विशाल,
किन्तु भरी खाली गई, उलट गया वह ताल।
चला गया रे, चला गया!
छला न जाय हाय! वह यह मैं।
छला गया रे छला गया।
चला गया रे चला गया ॥

उन्होंने सिद्धार्थ को बड़े लाड़-दुलार से पाला, किन्तु वे उसका ध्यान न कर चले गए। पुत्र-वियोग विष-फल के समान उन्हें प्रतीत होता है। पिता के लिए पुत्र के समान कोई धन नहीं। वे कहते हैं—

"धिक् सब राज-पाट, धन-धाम"

दुःख की तीव्र पीड़ा उनके धैर्य को नष्ट कर देती है। वे पुरुष होकर भी यशोधरा से धैर्य धरने का साधन पूछते हैं। यथा—

धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मैं धरूँ!
तू ही बता, उसके लिए, मैं आज क्या करूँ!
× × ×
तू क्या कहती है बहू, पाऊँ मैं जहाँ कहीं,
चतुर चरों को भेज, खोजूँ भी उसे नहीं!

यशोधरा अत्यन्त साहस-पूर्वक कहती है —
तात, नहीं !

सोज करना उन्हीं के प्रतिकूल है।
तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ हैं !
खोज हम लावें उन्हें, क्या वे असमर्थ हैं !

किन्तु शुद्धोदन अधीर होकर वृद्ध-सुलभ भावना से कहते हैं। यथा—

बेटी, वह प्रौढ़ है क्या !
वत्स भोला-भाला है।

फिर स्वयं सीधे बनकर कह उठते हैं—

मैं हूँ पिता,
चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की।
भूखा वह भोला,
उठा रक्खूँ क्या उपाय मैं !

पुत्र-वियोग से व्यथित शुद्धोदन को जब सिद्धार्थ के सिद्धि-लाभ कर चुकने का समाचार मिलता है तो वे सीधा यशोधरा के भाग्य की सराहना करते हैं और स्वयं अपने पुत्र के स्वागत के लिए बाहर दौड़ जाना चाहते हैं।

अन्त में पिता का वह हृदय धन्य है, जो अपने पुत्र के लिए इतना व्यथित होता है।

यशोधरा में अन्तर्द्वन्द्व

यशोधरा-काव्य की रचना गुप्त जी ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर की है। [illegible] है और अपने अन्तर्द्वन्द्व के [illegible] है। पात्रों के अन्तर्द्वन्द्वों के [illegible] होते हैं। [illegible]

सम्मुख आते हैं। उनके मानस में संसार की अनित्यता का द्वन्द्व चल रहा है। वे सोच रहे हैं—

घूम रहा है कैसा चक्र।
यह नवनीत कहाँ जाता है,
रह जाता है तक्र।
पिसो, पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक,
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र!
घूम रहा है कैसा चक्र।

जीवन के विषय में वे सोचते हैं—

मरने को जग जीता है!
रिसता है जो रन्ध्र-पूर्ण-घट
भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नहीं, कब किसका
समय कहाँ आ बीता है!

फिर उनके हृदय में भावनाएँ उठती हैं—

विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है!

इस अन्तर्द्वन्द्व में सिद्धार्थ का मन चेतन का रहस्य जानने के लिए उत्सुक हो रहा है। वे विचार करते हैं—

कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मन चीता है!

इसके पश्चात् वे अपने मन में ठान लेते हैं—

खोजूँगा मैं,
बिना यहाँ

सिद्धार्थ अन्तर्द्व ... को

ठुकरा कर, मुक्ति-मार्ग की खोज के निमित्त वह वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

इसके पश्चात् यशोधरा हमारे सम्मुख आती है। उसके मन में भी भारी द्वन्द्व हमें मिलता है। वास्तव में सम्पूर्ण काव्य यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व से ही परिपूर्ण है। कवि ने महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् कुछ गिने चुने गीतों में नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुर-जन तथा छन्दक आदि का अन्तर्द्वन्द्व चित्रण किया है। उसके पश्चात् यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हमें 'यशोधरा और राहुल जननी' शीर्षक गीतों से प्राप्त होता है।

यशोधरा बड़ी विकलता के साथ वियोग को कोसती है—

मिला न हा! इतना भी योग,
मैं हँस लेती तुझे वियोग।
देती उन्हें विदा मैं गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह विश्वास न उठता हा कर।
बनता मेरा राग न रोग।
मिला न हा! इतना भी योग।

वह इस लिए और भी व्यथित है कि उसके प्रियतम ने उस पर विश्वास नहीं किया—

दूँ किस मुँह से तुम्हें उलहना,
नाथ, मुझे इतना ही कहना।
हाय! स्वार्थिनी थी मैं ऐसी
रोक तुम्हें रख लेती!
जहाँ राज्य ही त्याज्य,
वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती!
आश्रय होता या वह बहना!
नाथ, मुझे इतना ही कहना।

वह अपने मन को समझाती हुई कहती है—

अब कठोर हो वज्रादपि
ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्य-पुत्र दे चुके परीक्षा,
अब है मेरी बारी।

उसकी व्याकुलता इसी प्रकार निराशा के हिंडोले पर झूलती है। वह राहुल जननी बन कर सोचती है—

गोपा गलती है, पर उसका
राहुल तो पलता है।
अश्रु-सिक्त आशा का अंकुर,
देखूँ कब फलता है।

कभी अपना मन गाकर बहलाना चाहती है—

कूक उठी है कोयल काली,
ओ मेरे वन माली।

शीघ्र ही उसे प्रकृति के विलास में अपना अन्तर्द्वन्द्व साकार होता दीख पड़ता है। वह सोचने लग जाती है—

माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते हैं,
जाना, यह दाड़िम, आम सभी सड़ते हैं।
पर क्या योंही यह कभी टूट पड़ते हैं?
या काँटे ही चिर-काल हमें गड़ते हैं?
मैं विफल तभी, बीज-रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ?

वह कभी-कभी अन्तर्द्वन्द्व में स्वयं को भी भूल जाती है। उसके स्वप्न भी उसे जागरण बन जाते हैं। स्वयं से वह पूछती है—

उठती है अन्तर में कैसी
एक मिलन जैसी उमंग,
लहराती है रोम-रोम में

प्रोफ़ेसर वासुदेवनन्दन के अनुसार गुप्तजी की कविता में स्फूर्ति, लोक-हित के अभाव की मूर्ति और सुखद जीवन स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। आपने सरल और कोमल हृदयों की अभिव्यक्ति की है। गुप्तजी ने अपने काव्य में अन्य वैष्णव-कवियों के समान काव्य-कला उपदेश का समिश्रण नहीं किया, वरन् उसमें रमणीयता और शिक्षा के समान रूप से स्थान दिया है। यह इस कारण कि देश की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं।

वैष्णव भगवत-लीला में लीन रहना चाहता है। वह मोक्ष नहीं चाहता। 'कह मोक्ष किस लिए मैं तुम्हें पाऊँ' वह इसी संसार को स्वर्ग बना लेना चाहता है। यह मनुष्य के अपने हाथ की बात है।

यदि, हम में अपना नियम तथा शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें, स्वस्थता सम है।

वासनाओं से पराभूत संसार नर्क है। जब हम अपने मनोबल एवं आत्मबल का परिचय दें तो यही संसार स्वर्ग बन जाता है। यथा—

अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जीत है।

जो मनुष्य संयम, नियम, आत्म-निग्रह, इन्द्रिय-दमन, व्यवस्था, तथा सात्विकता अपना लेता है, उसका जीवन स्वर्ग बन जाता है। सांसारिक दुख, रोग और शोकों से छुटकारा पाने के लिए संसार से पलायन करना ठीक नहीं। इस प्रकार की भावना अकर्मण्यता एवं डरपोक-पन है। जब प्रकृति नियम बद्ध कार्य-क्रम में व्यस्त है, तो मनुष्य किस प्रकार इसका अपवाद हो सकता है। गुप्तजी के अनुसार संसार में रहकर सांसारिक माया-मोह से निर्लिप्त रहे, यही सच्चा पुरुषार्थ एवं सत्य साधना, मोक्ष की कुंजी है। यथा—

जल मूल मातृत्व मिटाओ, मिटे मरण चौरासी।

आपका मत है कि दुखानुभव के पश्चात् ही सुख की महत्ता प्रकट होती है। क्योंकि—

ठुकरा कर, मुक्ति-मार्ग की खोज के निमित्त वह वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

इसके पश्चात् यशोधरा हमारे सम्मुख आती है। उसके मन में भी भारी द्वन्द्व हमें मिलता है। वास्तव में सम्पूर्ण काव्य यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व से ही परिपूर्ण है। कवि ने महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् कुछ गिने चुने गीतों में नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुरजन तथा छन्दक आदि का अन्तर्द्वन्द्व चित्रण किया है। उसके पश्चात् यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हमें 'यशोधरा और राहुल जननी' शीर्षक गीतों से प्राप्त होता है।

यशोधरा बड़ी विकलता के साथ वियोग को कोसती है—

मिला न हा! इतना भी योग,
मैं हँस लेती तुझे वियोग।
देती उन्हें विदा मैं गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह विश्वास न उठता हा कर।
बनता मेरा राग न रोग।
मिला न हा! इतना भी योग।

वह इस लिए और भी व्यथित है कि उसके प्रियतम ने उस पर विश्वास नहीं किया—

दूँ किस मुँह से तुम्हें उलहना,
नाथ, मुझे इतना ही कहना।
हाय! स्वार्थिनी थी मैं ऐसी
रोक तुम्हें रख लेती!
जहाँ राज्य ही त्याज्य,
वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती!
आश्रय होता या वह बहना?
नाथ, मुझे इतना ही कहना।

को विकसित करनेवाले आत्म-संयम, आदर्श-पालन, त्याग और सद्-गृहस्थ जीवन की महत्ता आदि आदर्शों का दिग्दर्शन कराया है।

यशोधरा के जीवन की कथा की लपेट में कवि ने समस्त नारी-जाति के दुःख-दर्द की गाथा गाई है। संसार में स्त्री के दो रूप प्रधान रहे हैं। एक मातृ का रूप और दूसरा पत्नी का। इन दोनों रूपों में संघर्ष रहता है। फलतः कभी पत्नी पक्ष प्रबल हो जाता है तो कभी मातृ-पक्ष। नारी रूप में वह निर्लिप्त-भाव विषय भोग, तृष्णा, कामना और मुक्ति की भावना तक का त्याग कर इन्द्रियजित हो काल-यापन करती है। इस प्रकार वह मानव के रूप में दैवत्व से पूर्ण रहती है। अतुल-त्याग द्वारा मनुष्य देवता बन जाता है। यह प्रथम सन्देश है, जो हमें यशोधरा में प्राप्त होता है।

दूसरा सन्देश हमें माता यशोधरा से मिलता है। यह सन्देश नारी के त्याग की ओर संकेत करता है। यशोधरा अपने सुख-दुःख की चिन्ता न करके राहुल के लिए तिल-तिल गलना जानती है। उसका आदर्श गोस्वामी जी के शब्दों में—

जिय बिन देह, नदी बिन बारी।
तैसेइ नाथ पुरुष बिन नारी॥

रहा है। पति चाहे उसे आत्मोन्नति में बाधक समझकर त्याग दे परन्तु नारी तो स्पष्ट घोषणा करती है—

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।
पहले हो तुम यशोधरा के, पीछे होंगे किसी परा के,
मिथ्या भय हैं जन्म-जरा के, इन्हें न उनमें सानो,
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

इस प्रकार यशोधरा से हमें त्याग एवं अनन्यता की भावना का सन्देश मिलता है। आज के विशृंखल समाज में स्वार्थ, त्याग

एवं सहयोग की भावना का होना अनिवार्य प्रतीत होता है। समाज में शान्ति, कर्तव्य-भावना के द्वारा हो सकती है। यही भावना हमें यशोधरा में सर्वत्र छिटकी मिलती है। इसके अतिरिक्त, इन्द्रिय दमन, आत्म-संयम तथा आत्म-त्याग की महान् आवश्यकता की ओर भी गुप्तजी ने संकेत किया है। लोक-मान्य तिलक के कर्म-काण्ड का भी समर्थन किया है। यह नियमित, सुव्यवस्थित जीवन को मानव के लिए कल्याणमय मानती है। यथा—

> यदि, हम में अपना नियम तथा शम दम है,
> तो लाख व्याधियाँ रहें, स्वस्थता सम है।

कवि का पूर्ण विश्वास है—

> अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जीत है।

इस प्रकार हम यशोधरा में अतुल त्याग, नारी का अनुपम त्याग, समाज में शान्ति एवं कर्तव्य-परायणता की भावना को प्रसारित करना ही पाते हैं।

यशोधरा में वैष्णवता

वैष्णव परिवार में पालित एवं पोषित होने से गुप्तजी में वैष्णवता की भावना स्पष्ट रहना चाहिए। आधुनिक युग के जागरुक घटक रहने से गुप्तजी रूढ़िवादी धर्मान्ध वैष्णव नहीं हैं। वह सगुण ईश्वर को मानते हैं और अवतार-वाद में विश्वास रखते हैं। वैष्णवों की भाँति वह मोक्ष की इच्छा नहीं करते। गुप्तजी ने आरम्भ में एवं महाभिनिष्क्रमण के समय जो प्रार्थना करवाई है, वह सारे धर्म समझ कर दी गई है।

गुप्तजी ने राम को क्रान्तिकारी रूप में साकेत में अंकित किया है, जिससे अनुमान होता है कि तुलसी के उस भव-भार निवारण करनेवाले राम से ही विरक्त होकर, वर्तमान आवश्यकतानुसार ही राम का रूप स्वीकार करते हैं।

प्रोफेसर वासुदेवनन्दन के अनुसार गुप्तजी की कविता में स्फूर्ति, लोक-हित के अभाव की मूर्ति और सुखद जीवन स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। आपने सरल और कोमल दृश्यों की अभिव्यक्ति की है। गुप्तजी ने अपने काव्य में अन्य वैष्णव-कवियों के समान काव्य-कला उपदेश का समिश्रण नहीं किया, वरन् उसमें रमणीयता और शिक्षा के समान रूप से स्थान दिया है। यह इस कारण कि देश की परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं।

वैष्णव भगवत-लीला में लीन रहना चाहता है। वह मोक्ष नहीं चाहता। 'कह मोक्ष किस लिए मैं तुम्हें पाऊँ' वह इसी संसार को स्वर्ग बना लेना चाहता है। यह मनुष्य के अपने हाथ की बात है।

यदि, हम में अपना नियम तथा शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहें, स्वस्थता सम है।

वासनाओं से पराभूत संसार नर्क है। जब हम अपने मनोबल एवं आत्मबल का परिचय दें तो यही संसार स्वर्ग बन जाता है। यथा—

अपने को जीता जहाँ, वहीं सब जीत है।

जो मनुष्य संयम, नियम, आत्म-निग्रह, इन्द्रिय-दमन, व्यवस्था, तथा सात्विकता अपना लेता है, उसका जीवन स्वर्ग बन जाता है। सांसारिक दुख, रोग और शोकों से छुटकारा पाने के लिए संसार से पलायन करना ठीक नहीं। इस प्रकार की भावना अकर्मण्यता एवं डरपोक-पन है। जब प्रकृति नियम बद्ध कार्य-क्रम में व्यस्त है, तो मनुष्य किस प्रकार इसका अपवाद हो सकता है। गुप्तजी के अनुसार संसार में रहकर सांसारिक माया-मोह से निर्लिप्त रहें, यही सच्चा पुरुषार्थ एवं सत्य साधना, मोक्ष की कुँजी है। यथा—

जल मूल मातृत्व मिटाओ, मिटे मरण चौरासी।

आपका मत है कि दुखानुभव के पश्चात् ही सुख की महत्ता स्पष्ट होती है। क्योंकि—

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुख रहता !
प्रिय हृदय सदय हो तपस्या क्यों सहता !

संसार का दुख, रोग, शोक, संसार में रहकर ही मगाया ज सकता है, संसार से भाग कर नहीं। अतः स्पष्ट है कि यशोधरा में उदार वैष्णव-भावना के साथ नारी के महत्व की भावना ओत प्रोत है।

राधा, यशोधरा और उर्मिला

प्रिय प्रवास की राधा—राधा प्रिय-प्रवास की आत्मा है। राधा का प्रणय-प्रेम बालक-बालिकाओं का पारस्परिक प्रेम, बाल्यकालीन परिचय से ही विकसित हुआ है। लोक-हित भावना से प्रेरित होकर मथुरा गमन के पश्चात् राधा भी लोक-हित कार्यों में संलग्न हो जाती है। यथा—

रोगी वृद्ध जनोपकार निरता सच्छास्त्र चिन्ता परा,
राधा थी सुमुखी विशाल-हृदया स्त्री-जाति रत्नोपमा।

इस प्रकार राधा की सहृदयता एवं त्याग-भावना का हमें पता चलता है। इस भावना की प्रौढ़ता के दर्शन हमें राधा के पवन द्वारा भेजे हुए सन्देश मे होते हैं। इस सन्देश को पढ़ने के पश्चात् राधा की उदारता, परोपकारी भावना एवं लोक-हित प्रवृत्ति का अनुमान हम कर सकते हैं। साथ ही नारी-हृदय की दुर्बलता, ममता, मोह और आसक्ति राधा के चरित्र में हमें सर्वत्र दिखती मिलती हैं। प्रेमिका राधा का परिस्थिति जन्य, परवशता एवं कृष्ण की निष्ठुरता के कारण, विरह-वेदना का वर्णन ही इस महाकाव्य का उद्देश्य है। यह उद्धव से स्पष्ट कहती है—

नाना स्वार्थों विविध सुख की वासना मध्य डूबा।
आवेगों मे कलित ममतावान् है मोह डूबा।

× × ×

सद्यः होती फलित चित्त में मोह की मत्तता है।
धीरे प्रणय बसता कँपता है उस में।
हो जाती है विवश अपरा वृत्तियाँ मोह द्वारा।
भावोन्मेषी प्रणय करता सर्व सद्वृत्ति को है।
देखी जाती कुँवर वर के रूप में ही महत्ता।
पायी जाती मुरलि-स्वर में कामिनी दिव्यता है।
प्यारे-प्यारे सगुण-गण के सात्विकी मूर्ति वे हैं।
कैसे व्यापी प्रणय उनको अन्तरों में न होगा।

रीति-कालीन नायिकाओं के समान राधा चित्त-विकार से विवश होकर पुष्पों एवं हवा को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपालम्भ देती है। अन्त में राधा पर—

मुश्किलें इतनी पड़ीं कि वह भी आसाँ हो गयी।

अब प्रणय के भयंकर, प्रखर और दाहक स्वरूप शीतल, मनोहर और निर्माणात्मक हो गये। इस परिवर्तन के पश्चात् राधा का नूतन जन्म हो गया और प्राकृतिक पदार्थ राधा को विषाद देने के स्थान पर आनन्द-प्रद ही लगने लगे—

जो होता है उदित नभ में कौमुदी-कान्त आके।
या जो कभी कुसुम विकसा देख पाती कहीं हूँ।
लोने-लोने हरित-दल के पादपों के विलों के।
प्यारा प्यारा विकच मुखड़ा है मुझे याद आता।

इस भावना से प्रेरित होकर अब राधा इच्छा करने लगी—

प्यारे आवें मृदु वचन कहें प्यार से अंक लेवें,
ठंडे होवें नैन, दुख हों दूर, मैं मोद पाऊँ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी हैं,
प्यारे जीवें जग-हित करें गेह चाहे न आवें।

अन्त में वह घोषणा कर देती है कि—

मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोक-मग्ना,

हाँ, जैसी हूँ व्यथित, ब्रज के वासियों के दुखों से।
गोपी गोपों व्यथित ब्रज की बालिका बालकों को,
आके पुष्पानुपम मुखड़ा कृष्ण प्यारे दिखावें।

धीरे धीरे राधा—

दीनों की थी भगिनी, जननी थी अनाश्रितों की,
आराध्या थी अवनि ब्रज की, प्रेमिका विश्व की थी।

विकास प्राप्त कर नारी से देवी हो गयी। इसका अर्थ ही यह है कि वह दुख और सुख के अन्तर का अनुभव करनेवाली अवस्था से मुक्त होकर उस अवस्था में पहुँच गयी, जहाँ विषाद और हर्ष में कोई भेद-भाव नहीं रह जाता।

यशोधरा—यशोधरा पति-वियोगिनी है। राधा के समान इसका वियोग निर्बाध है। कहा जा सकता है कि मुक्ति की खोज कर गौतम घर लौट तो आये, परन्तु क्या उनके लौटने के पश्चात् उनका चिर-संयोग हो सका? वास्तव में वह तो चिर-वियोग ही था। अपने पति को एक बार खोकर उसने, उनको सदा के लिए खो दिया। राधा के समान यशोधरा भी स्पष्ट कहती है—

सिद्धि हेतु स्वामी गए यह गौरव की बात।

अतः वह चाहती थी कि पति को आदर के साथ विदा दे। यशोधरा में उत्तरदायित्व की भावना बड़ी तीव्र है। वह राज-वधू है। राज-धर्म उसके कुल का धर्म था। राज्य को छोड़कर मुक्ति के लिए घूमने में जो आदर्श निहित है, वह निस्सन्देह राजकीय भोग-विलास के वातावरण में पलनेवाले राज-धर्म से कहीं ऊँचा है। अपने वियोग के समाधान के लिये यशोधरा बहुत ऊँची उठ जाती है। वह अपनी दृढ़ता और गम्भीरता को यथाशक्ति हाथ से नहीं छूटने देती है। सामाजिक आदर्श, कौटुम्बिक शिष्टाचार आदि हमारे सामने एक माप उपस्थित कर देते हैं, जिसकी संगीत में हमारे

आचरण को प्रगति करनी चाहिये। यशोधरा इस माप से बहुत ऊँची उठ जाती है। वह कहती है—

> मिला न हा ! इतना भी योग,
> मैं हँस लेती तुझे वियोग।
> देती उन्हें विदा मैं गाकर,
> भार झेलती गौरव पाकर,
> यह निःश्वास न उठता हो कर
> बनता मेरा राग न रोग,
> मिला न हा ! इतना भी योग।

यशोधरा बड़ी उदार है। यह बात उसकी गौतमी के साथ वार्तालाप होने से प्रकट होती है—

गौतमी—"निर्दय पुरुषों के पाले पड़कर हम अबलाजनों के भाग्य में रोना ही लिखा है।"

इस कथन से सहमत न होकर यशोधरा फटकार कर उत्तर देती है—

"अरी तू उन्हें निर्दय कैसे कहती है। वे तो किसी कीट-पतंग का भी दुख नहीं देख सकते।"

गौतमी फिर इसका विरोध करती है—

"तभी न हम लोगों को इतना सुख दे गये हैं।"

इसपर यशोधरा कितनी गम्भीरता-पूर्वक कहती है—

"वे हमारे सच्चे सुख की खोज में गए हैं।"

पति-वियोग में यशोधरा अब इतनी दुर्बल हो गई है कि उसका पुत्र राहुल ही उसे नहीं पहचान पाता। एकाएक चित्र देखकर वह कहता है—

"अरे, यह तो देख, पिता के पास ही यह कौन खड़ी है ! वे उसे मरकत की माला उतार कर दे रहे हैं। यह हाथ बढ़ा कर संकुचित सी हो रही है।"

यशोधरा के हृदय में पीड़ा के प्रबल झोंके आते हैं, किन्तु उनमें इतना बल नहीं कि वे उसके पैर उखाड़ दें। प्रियतम का उसके प्रति उपेक्षा-भाव आत्माभिमान की भावना को जाग्रत कर देता है और वह अपने से च्युत न होने का निश्चय कर लेती है। वह अपनी आँखों को तरसा कर प्राणों को तड़पा कर जहाँ की तहाँ पड़ी रहती है।

यशोधरा में मुक्ति की ऐसी खोज करने के प्रति विद्रोह है जिसमें सांसारिक कर्तव्यों को विस्मृति के अंक में फेंककर, अपनी प्रगति का पथ परिस्कृत करने का प्रयास किया जाता है। गौतम के अनुसार—

> रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा !
> कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा।

यशोधरा का स्पष्ट तर्क-युक्त उत्तर है—

> यदि हम में अपना नियम और शम-दम है,
> तो लाख व्याधियाँ रहें स्वस्थता सम है।
> वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम है;
> नवजीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है!
> अब आवे मुझको और उसे मैं भाऊँ।
> वह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ।

इस प्रकार यशोधरा आधुनिक युग की शिक्षिता नारी की प्रतीक है। यशोधरा के द्वारा कवि ने यह संदेश समाज को दिया है कि व्यक्ति को समाज-हित के लिए प्रगल्भता अथवा निराशा से आत्म त्याग की साधना के लिए उद्यत रहना चाहिए। कवि ने यशोधरा को व्यक्ति-मात्र नहीं रखा है, वरन् वह एक भावना अथवा एक वर्ग की प्रतिनिधि के रूप में हमारे सामने आती है।

८. श्री उर्मिला—मन्थरा के कुचक्र से भगवान् राम को वनवास के कारण वन-गमन करना पड़ा। लक्ष्मण ने भ्रातृ-प्रेम के कारण उनका अनुगमन किया। नव-वधू उर्मिला की इस परिस्थिति

के कारण सबसे कठिन कष्ट सहन करना पड़ा। वही विषाद, साकेत की कथा की रीढ़ की हड्डी उसी प्रकार बना, जिस प्रकार यशोधरा ग्रन्थ की धुरी।

साकेत के आरम्भ में उर्मिला और लक्ष्मण के हास-परिहास का वर्णन है। इस आनन्द-विहार के पश्चात् परिस्थिति-जन्य कष्टों का दिग्दर्शन कराकर कवि ने करुणा की भावना को तीव्रता प्रदान कर दी है। उर्मिला को चतुर्दश वर्ष विरहाग्नि में तपना था। उसने अपना सम्पूर्ण वियोग काल कातर करुणा-जनक रोदन में ही व्यतीत किया। जब उर्मिला सुनती है कि उसका पति मरणासन्न है तो—

> आई झुक समीप सकी लक्ष्मण की रानी।
> प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी।
> जटा-जाल से बाल विलम्बित छूट पड़े थे।
> आनन पर सौ अरुण घटा में फूट पड़े थे।
> माथे का सिन्दूर सजग शृंगार सदृश था।
> प्रथमातप सा पुष्प-गात यद्यपि वह कृश था।
> बाँया कर शत्रुघ्न पृष्ठ पर कण्ठ निकट था।
> दायें कर में स्थूल-किरण-सा शूल विकट था।

इस रूप में उर्मिला आगे-आगे कीर्ति सी चल दी। भगवान् राम उर्मिला के तप की प्रशंसा करते हुए कहते हैं—

> तूने तो सह-धर्म्म चारिणी के ऊपर,
> धर्म्म स्थापन किया भाग्य, भाग्य शालिनि इस भू पर।

'यशोधरा में स्वयं अमिताभ का कथन है—

> दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
> भूत - दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यशोधरा में त्याग की भावनाओं का स्तर संकुचित स्तर से उठकर लोक व्यापक हो गया है।

हे ऋतु वर्य ! क्षमा कर मुझको देख दैन्य यह मेरा,
करता रहे प्रतिवर्ष, यहाँ तू, फिर-फिर अपना फेरा।
सी-सी करती हुई पार्श्व में पाकर जब तक मुझको,
अपना उपचारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको।

यहाँ उर्मिला का दैन्य व्यक्तिगत स्वार्थ की हानि से सम्बन्ध रखता है। उसके आँसू लक्ष्मण की सम्पति हैं। वे उन्हीं के चरणों में अर्पित हुए हैं। वे विश्व की सम्पति नहीं। अतः वह विश्वात्मा के पद-पद्मों पर नहीं चढ़े हैं। उनमें अतिशयता ही अधिक है। उसकी लालसा को हम केवल पति के शारीरिक मिलन में ही केन्द्रीभूत देखते हैं। यशोधरा में मन के मिलन की ओर संकेत है। अन्त में साक्षात्कार होने पर भी यशोधरा वासनात्मकता का परिचय नहीं देती, वरन् यह जानकर कि भगवान् बुद्ध के हृदय में एक कोना उसे भी मिला हुआ है, वह सन्तोष कर लेती है और उन्हें विश्व-कल्याण के कार्य करने के लिए स्वतन्त्र कर देती है।

प्रिय-मिलन की संभावना के समय उर्मिला दुःख का अनुभव करती है। क्योंकि—

पर यौवन-उन्माद कहाँ से लाऊँगी मैं ?
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मैं ?
× × × ×
विरह रुदन गया, मिलन में भी मैं रोऊँ।
मुझे और कुछ नहीं चाहिए, पद-रज धोऊँ।

परन्तु यशोधरा हाय-हाय न कर मर्यादा का पालन करती है और निश्चिन्तता से घटना-क्रम को देखती है। जब यशोधरा ने विश्व-कल्याण व्रत ले लिया, फिर अपना सर्वस्व वार देना वह अपना कर्तव्य समझती है और समय आने पर पति एवं पुत्र दोनों को ही विश्व-कल्याण की बलिवेदी पर चढ़ा देती है।

प्रिय-प्रवास की राधा परिस्थिति की कठोरता और कृष्ण के

मिलने की असम्भवता से प्रेरित होकर जन-सेवा की ओर प्रेरित होती है। अतः स्पष्ट है कि यशोधरा का चरित्र राधा से अधिक गुरु परिष्कृत एवं आदर्श-पूर्ण है।

सारांश यह है कि प्रिय-प्रवास की राधा, साकेत की उर्मिला तथा यशोधरा के विरह का आदर्श जैसे साकार हो गया है, उस युग का सन्देश सेवा है। राधा, उर्मिला और यशोधरा तीनों ही सेवा के आदर्श को ग्रहण कर अपनी व्यथा का उन्नयन करती हैं।

यशोधरा में गुप्तजी की कला

भाषा—गुप्तजी द्विवेदी-कालीन खड़ी बोली के प्रमुख कवि हैं। यशोधरा में आपकी भाषा पूर्ण निखार के साथ प्रयुक्त नहीं हुई है। खड़ी बोली के विकास तथा संस्कार में गुप्तजी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। गुप्त जी ने शुद्ध संस्कृत-निष्ठ सरल, सरस, मुहाविरेदार, टकसाली, परिमार्जित, प्रमाद-युक्त एवं व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग किया है। आपने साफ-सुथरी, स्वाभाविक एवं सुबोध भाषा में अपने ग्रन्थों की रचना कर खड़ी बोली को स्थिरता प्रदान की है। यद्यपि भारतेन्दु काल से खड़ी बोली को काव्य-भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। किन्तु गुप्तजी से पूर्व उसको एक समता कोई प्रदान न कर सका। जब हम गुप्तजी के पूर्व के साहित्यकारों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि पं० श्रीधर पाठक की भाषा, ब्रजभाषा की लपेट पर लँगड़ाती चलती है और हरिऔध का प्रिय-प्रवास समासान्त पदावली से युक्त एवं संस्कृत-गर्भित रहने से नितान्त शुद्ध नहीं कहा जा सकता; परन्तु गुप्तजी ने खड़ी बोली का उत्कृष्ट एवं परिमार्जित रूप हमारे सम्मुख उपस्थित किया है; जिसके कारण आप जन-साधारण के कवि हो गए हैं। आपकी भाषा प्रभावोत्पादक, शक्तिशाली, सरल एवं मधुर और बोधगम्य रहने से आदर्श मानी जा सकती है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियाँ देखिये—

भव का यह विभव साथ, याती भर किन्तु हाथ।
ले ले कब लौट नाथ? सौंप बचे चेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
हुआ विवाद सदय-निर्दय में उभय आग्रही थे, स्व विषय में
गई बात तब न्यायालय में, सुनी सभी ने जानी।
सुनी सभी ने जानी? व्यापक हुई कहानी।

संस्कृत-निष्ठ एवं तत्सम रूपों में लदी रहने पर भी गुप्तजी की भा क्लिष्ट नहीं है—

अम्ब, स्वप्न देखा है रात,
लिए मेष-शावक गोदी में खिला रहे हैं तात!
उसकी प्रसू चाटती है पद कर कर के प्रणिपात।
घेरे हैं कितने पशु-पक्षी, कितना यातायात।

यद्यपि कहीं-कहीं भाषा बड़ी कर्कश तथा नीरस भी हो गई है, परन्तु से स्थल बहुत कम हैं।

बाहर से क्या जोड़ूँ जाड़ूँ? मैं अपना ही पल्ला भाड़ूँ।
तब है जब वे दाँत उखाड़ूँ, रह भवसागर-नक्र
घूम रहा है कैसा चक्र।

गुप्तजी ने लगभग सभी स्थलों पर चुस्त, सतेज एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। एक आध ही स्थान पर अनुप्रास-प्रियता के लोभ वह संवरण न कर सके हैं जिससे कहीं-कहीं पर भाषा में शिथिलता एवं अस्वाभाविकता आ गई है। उदाहरण से स्पष्ट है—

तेरा चन्द्र-हार यह टूटा, किसने हाय, भरा घर लूटा!
अर्णव-सा दर्पण भी छूटा।

कहीं-कहीं भौंटा, कसाला, अभ्रभ्रवति, गौरिक-दुकूलिनी, कशा, त्रिभगान् आदि प्रान्तीय अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी आपने किया है। किसी-किसी स्थल पर दिव्य मूर्ति-वंचित मानस मुकाहार आदि समासान्त पदों का प्रयोग भी हुआ है। यह सब होने पर भी

हुल और गोपा के कथनोपकथनों को देखते ही बन पड़ता है। शोधरा के अन्तर्नाद को गुप्त जी ने गीतों द्वारा व्यक्त किया है। वा—

उलट पड़ा यह दिव—रत्नाकर,
पानी नीचे ढलक बहा।
तारक—रत्न-हार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा।

यशोधरा में कई स्थलों पर नाट्यकीय तत्वों की भी झलक दृष्टि-गोचर होती है—

राहुल का चुपके से गोपा को पीछे से आकर प्रणाम करना, त्रिसी का गोपा को सिद्धि प्राप्ति का समाचार देना आदि स्थल नाटकीय ढंग पर ही विकसित किए गए हैं।

यशोधरा में दृश्य वर्णन भी बड़े सुन्दर, सजीव एवं हृदय-हारी ए हैं—

प्रकट कर गई धन्य रस-राग तू!
पी, फटकर भी निरुपाय।
भरे है अपने भीतर आग तू!
री छाती, फटी न हाय!

गोपा के चरित्र-विकास में कथनोपकथन एवं स्वगत कथनों से की सहायता ली गई है। इस प्रकार प्रबन्ध-काव्य के चरित्र-चित्रण दृश्य वर्णन, कथनोपकथन, नाटकत्व, रस आदि सभी आवश्यक तत्वों का समावेश यशोधरा में हुआ है। इतना सब होते हुए भी यह बन्ध काव्य न होकर एक मिश्रित काव्य ही है जिसमें गद्य, पद्य, टक गीत आदि सभी का सम्मिश्रण है। इसके पाठन से प्रबन्ध व्य तथा खण्डकाव्य दोनों का ही आनन्द प्राप्त होता है।

अन्त में यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि विराम आदि का प्रयोग आपने सर्वत्र उचित ही किया है।

[illegible] और गोपा के कथनोपकथनों को देखते ही बन पड़ता है। [illegible]धरा के अन्तर्नाद को गुप्त जी ने गीतों द्वारा व्यक्त किया है। [illegible]—

उलट पड़ा यह दिव—रत्नाकर,
पानी नीचे ढलक बहा।
तारक—रत्न-हार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा।

यशोधरा में कई स्थलों पर नाट्यकीय तत्वों की भी झलक दृष्टि-[illegible]चर होती है—

राहुल का चुपके से गोपा को पीछे से आकर प्रणाम करना, [illegible]मी का गोपा को सिद्धि प्राप्ति का समाचार देना आदि स्थल [illegible] नाट्यकीय ढंग पर ही विकसित किए गए हैं।

यशोधरा में दृश्य वर्णन भी बड़े सुन्दर, सजीव एवं हृदय-हारी [illegible] हैं—

प्रकट कर गई धन्य रस-राग तू!
पी, फटकर भी निरुपाय।
भरे है अपने भीतर आग तू!
री छाती, फटी न हाय!

गोपा के चरित्र-विकास में कथनोपकथन एवं स्वगत कथनों से [illegible]ी सहायता ली गई है। इस प्रकार प्रबन्ध-काव्य के चरित्र-चित्रण [illegible] वर्णन, कथनोपकथन, नाटकत्व, रस आदि सभी आवश्यक तत्वों [illegible] समावेश यशोधरा में हुआ है। इतना सब होते हुए भी यह [illegible]न्ध काव्य न होकर एक मिश्रित काव्य ही है जिसमें गद्य, पद्य, [illegible]टक गीत आदि सभी का समिश्रण है। इसके पाठन से प्रबन्ध [illegible]व्य तथा खण्डकाव्य दोनों का ही आनन्द प्राप्त होता है।

अन्त में यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि विराम आदि का [illegible]योग आपने सर्वत्र उचित ही किया है।

छन्द—द्विवेदी काव्य में छन्दों के क्षेत्र में एक क्रान्ति-आरम्भ हो गयी थी। इस क्रान्ति ने प्रसाद-युग में और भी विकराल रूप धारण किया। इस क्रान्ति के अनुसार पुराने छन्दों का बहिष्कार किया जाने लगा और उनमें तुकान्त, अतुकान्त छन्दों का समावेश किया जाने लगा। धीरे-धीरे अनेकों पुराने छन्दों को नया रूप मिला, अनेक उर्दू छन्दों को हिन्दी में परिवर्तित किया जाने लगा इस प्रकार अनेक नवीन छन्दों का आविर्भाव हुआ। अतएव द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से प्रेरित गुप्तजी ने संस्कृत के कुछ वर्ण वृत्त प्रयुक्त किये किन्तु शीघ्र ही उन्होंने मात्रिक व तुकान्त छन्दों से प्रभावित होकर उन्हें अपना लिया। इसके पश्चात् अनेकों पुराने छन्दों को नवीन रूप में परिवर्तित कर उन्हें अपने काव्यों में प्रयुक्त किया। यशोधरा में उनकी इस योजना के दर्शन प्रत्यक्ष होते हैं।

गुप्तजी ने अधिकतर यशोधरा में मात्रिक छन्दों को ही अपनाया है। अपने काव्य में उन्होंने छन्दों को स्थान देते समय जनता की रुचि का भी बड़ा ध्यान रखा है। पुराने छन्दों को नवीनता प्रदान करने में गुप्तजी कितने कुशल हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है। वर्ण-वृत्तों का प्रयोग भी उन्होंने सफलता से किया है।

गोस्वामीजी ने निम्न पंक्तियों में पन्द्रह अक्षरों के जिस छन्द का प्रयोग किया है उसी को गुप्तजी ने 'यशोधरा' में कई स्थलों पर अतुकान्त बना कर प्रयुक्त किया है। यथा—

> देखि, द्वै पथिक गोरे-साँवरे सुभग हैं।
> सुतीय सलोनी सँग सोहत सुमग हैं।
> सोभा सिन्धु संभव-से नीके-नीके नग हैं।
> मातु पिता भागि बस गए परि फग हैं।
>
> —गोस्वामी तुलसीदास।

गुप्तजी ने इस छन्द को इस प्रकार प्रयुक्त किया है—

गोपे, हम अबला-जनों के लिए इतना
तेज-नहीं, दर्प-नहीं, साहस क्या ठीक है !
स्वामी के समीप हमें जाने से स्वयं यहीं ।
रोक नहीं सकते हैं, स्वत्व आप अपना ।
त्याग कर बोल, भला तू क्या पायेगी वहू !

यशोधरा में गीतों की ही अधिकता है जिनमें विभिन्न प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह कहना झूठ न होगा कि केशव की रामचन्द्रिका की भाँति यशोधरा भी छन्दों का भाण्डार है।

रस——यशोधरा शान्ति-रस प्रधान ग्रन्थ है, परन्तु उसमें करुण, वात्सल्य और विप्रलम्भ शृङ्गार का भी परिपाक अच्छा बन पड़ा है। शान्त-रस का स्थायी भाव निर्वेद या शम है। आलम्बन, भगवद्-चिन्तन, संसार की क्षण-भंगुरता, असारता और माया-मोह के भ्रामक रूप का मान आदि उद्दीपन हैं।

साधु-महात्माओं के आश्रम पावन-गङ्गा-यमुना तट, एकान्त बन, सात्विक-जीवन, पवित्र तीर्थादि का निर्वेद तथा हर्ष आदि इसके संचारी भाव हैं। इस दृष्टि से यदि विवेचन करें तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'यशोधरा' शान्त-रस प्रधान ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के रूपारम्भ में हम गौतम यौवन, जरा तथा मरण की समस्याओं में लीन दीख पड़ते हैं—

कैसे परित्राण हम पावें ? और भी—
सूख जायेगा मेरा उपवन, जो है आज हरा !
सौ-सौ रोग खड़े हों सम्मुख, पशु ज्यों बाघ परा ।
धिक जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा ।
रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा !
कुछ न किया, सूना भव भी यदि मैंने न तरा

यह विचार करते हैं, क्या सासारिक जीवन इस लिए है कि—
खावे पिये बस जिये मरे तू, यूँही फिर आये-जाये !

वह कर्म - काण्ड - तण्डव-विकास वेदी पर हिंसा हास रास।
'लोलुप रसना का लोल-रस' उन्हें पसन्द न था और इसीलिए महाभिनिष्क्रमण हुआ। ग्रन्थ का अन्त भी शान्त रस से हुआ है। गौतम अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र सबको दीक्षा देते हैं। यशोधरा कहती है—

> मेरे दुख में भरा विश्व-सुख, क्यों न भरूँ मैं हामी!
> बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छामि।

ग्रन्थ का लगभग आधा भाग वात्सल्य-रस से ओत-प्रोत है। यशोधरा में वात्सल्य का स्थायी भाव है। मातृ-स्नेह का आलम्बन है राहुल। एक उदाहरण देखिये—

> नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो चाहे पानी।
> नहीं पियेगा बेटा, यदि तू तो सुन चुका कहानी।
> तू न कहेगी तो कह लूँगा मैं अपनी मनमानी।
> सुन, राजा वन में रहता था, घर रहती थी रानी।
> और हठी बेटा रटता था - नानी-नानी - नानी,
> बात काटती है तू, अच्छा जाता हूँ मैं मानी।
> नहीं नहीं बेटा आ, तूने यह अच्छी हठ ठानी;
> सुन कर ही पीना, सोना मत, नई कहूँ कि पुरानी।

यशोधरा में विरह-वर्णन, संयत, मार्मिक, सरल, सरस, मौलिक एवं सजीव हुआ है। यह वर्णन नवीन एवं प्राचीन का सुन्दर सम्मिश्रण है। रुदन, चिन्तन आदि से लोक-मूर्छा तक का चरम वर्णन हमें इस ग्रन्थ में मिलता है। सुख भोग, वस्त्र, अलंकार, दर्पण जैसी किसी की उसे आवश्यकता नहीं थी। जीवन धारण के लिये फल और दूध के अतिरिक्त उसे सब त्याज्य था। इसके विप्रलम्भ में भी शान्त-रस के दर्शन होते हैं। विरह-वर्णन के द्वारा उन्होंने भारतीय नारी के चरम आदर्शों और जीवन की सुन्दर झाँकी दिखाई है। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय नारी वियोग के तार में

। जीवन की कठोरता से विमुख होकर विदेशी कवियों की विरह-
र्णों की भाँति न तो जीवन से पलायन करती है और न आत्म-
त्या करती है।

गोपा की विरह-दशा से सम्पूर्ण ग्रन्थ ओत-प्रोत है—

भर हर्ष में भी शोक में भी अश्रु, संसृति रो रही।

सम्पूर्ण प्रकृति गोपा के दुख से व्याप्त है—

उठने को ही वाष्प बना, गिरने को ही मेह बना।
मरने से बढ़कर यह जीना।
अप्रिय आशंकाएँ करना भय खाना हा! आँसू पीना।
फिर भी, बता करे क्या आली, यशोधरा है अवश-अधीना।
कहाँ जाए यह दीना-हीना, उन चरणों में ही चिर-लीना।

वैरागी पति के समान वह भी अपना जीवन बना लेती है—

आओ मेरे सिर के बाल।

इस प्रकार यशोधरा का वैराग्य एक कर्तव्य-परायण नारी का वैराग्य है। संसार के प्रति वैराग्य और अपने पति के प्रति अगाध प्रेम और राहुल के पालन-पोषण में अपना सच्चा आदर्श, उसने माना है।

इस ग्रन्थ में किसी-किसी स्थल पर हास्य-रस की भी अभिव्यक्ति की गई है। राहुल के अनुसार—

खान-पान तो दो ही धन्य,
आम और अम्बा का स्तन्य।

जब गौतमी कहती है कि तुम्हे तो दो ही पद स्मरण हुए! तो राहुल उत्तर देता है—

मेरा छन्द क्या चौपाया है—क्यूँ माँ!

इस प्रकार गुप्त जी ने कहीं-कहीं स्मित हास्य-रस का भी समावेश किया, किन्तु ऐसे स्थल हैं बहुत कम।

अलंकार—महान् कवि अलंकारों की घुड़दौड़ नहीं लगाते। वह

स्वतः ही उनके अनुगामी रहते हैं। स्थानों में स्वाभाविक रीति से आये अलंकारों की ही योजना की गई है। गुप्तजी को अनुप्रास प्रिय लगते हैं, किन्तु भावों का बलिदान करके कभी भी आपने उसका प्रयोग नहीं किया है। यह प्रयोग भी संभवतया में ही है—

खट पट करना, नाथ अटपट-सी मन भाई है मेरे,
दहता भी है बहता भी है यह जी मन सहता है।
काल-करों ने घर अम्बर में मारा मार मिचोली।

यत्र-तत्र दीपकालंकार का भी प्रयोग हुआ है—

अम्ब, तात कब आवेंगे!
धीरज धर बेटा, अवसर हम उन्हें एक दिन पायेंगे।
मुझे भले ही भूल जाएँ वे तुझे क्यों न अपनायेंगे,
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।
माँ तब पिता-पुत्र हम दोनों संग-संग फिर जायेंगे।
देना तू पायस, प्रेम से विचर-विचर कर खायेंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि गुप्तजी के काव्य में उपमारूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार स्वतः आकर उपस्थित हो गये हैं। अनुप्रास भी किसी-किसी स्थल पर आ गए हैं।

यशोधरा का मूल्यांकन

यशोधरा का साहित्यिक मूल्यांकन करने से पूर्व हमें उस समय पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिस समय उसकी रचना की गई थी। गुप्त जी ने इस ग्रन्थ की रचना उस समय की जब कि देश के कोने-कोने में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए भारत के मन चले व्यक्ति आन्दोलन उठा रहे थे। ऐसी स्थिति में देश को निडर तथा उत्साही सैनिकों की आवश्यकता हुई। इस समय घर की सीमाओं का महत्व नारी को समझ कर 'बाहर' की व्यवस्था सुधारने की आवश्यकता समझाई जा रही थी। पुरुष को पुत्र के साथ त्याग की वेदी पर निछावर

कर पीछे से स्वयं को भी प्राणि-मात्र के लिए कल्याण-हेतु भेंट कर देने का ईश्वरीय आह्वान नारी के कानों में गुंजित कर देने की ध्वनि धरित्री और गगन से प्रवाहित हो रही थी। ऐसे ही काल में गुप्तजी ने यशोधरा रची। युग संदेश की उच्च ध्वनि बनकर उसके गीत भारत के नर-नारियों के कानों में गूँजे। यदि पुरुष को भारत की मुक्ति की खोज की प्रेरणा यशोधरा से प्राप्त हुई तो नारी को घर पर रहकर पुरुष की शुभ कामनायें मनाने तथा वियोग के क्षणों को आत्मज को अंक में लेकर काटने का संदेश मिला। गाँधीजी की विचार-धारा को भी यशोधरा से बड़ी प्रेरणा मिली।

गुप्त जी की रचना 'यशोधरा' में भाषा, शैली, अलंकार, छन्द आदि सभी ने नवीनता प्राप्त की है। यशोधरा में नारी-जाति के दिव्य आदर्शों की व्याख्या है। इस ग्रन्थ में नारी-जीवन की समस्या को सुलझाते हुए वात्सल्य का योग देकर, कवि ने शैली में नवीनता ला दी है। यशोधरा में कवि के ही शब्दों में--

कविता, गीत, नाटक, गद्य, पद्य, तुकान्त एवं अतुकान्त सभी कुछ है। यशोधरा में कवि ने पुरानी संस्कृति को नवीनता प्रदान की है। यशोधरा के चरित्र में भारतीय नारी के अतीत गौरव का त्याग, धैर्य एवं उदारता को विविधाभूषणों से अलंकृत करके अपनी कला का परिचय दिया है।

गोपा को सबसे बड़ा दुःख बुद्धजी के चुपचाप निर्वाण प्राप्ति के लिये चले जाने पर है। सह-धर्मिणी का यह क्षोभ अत्यन्त युक्त-संगत है। यही वह क्षोभ है, जिसके कारण इस ग्रन्थ को अद्वितीयता प्रदान हुई है। वृद्ध सास-ससुर को कितने संयम से यशोधरा सान्त्वना देती है, यह देखकर मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित 'बड़े घर की बेटी' की याद आ जाती है। गोपा कहती है--

> उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
> सिद्धि - लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से।

भारतीय नारी का आदर्श है—

> जिय बिन देह नदी बिन बारी।
> तै सेइ नाथ पुरुष बिन नारी॥
>
> —गोस्वामी तुलसीदास

कैसा उच्चादर्श है उपर्युक्त दोहे में भारतीय नारी का। यशोधरा में भी भारतीय नारी के आदर्श के दर्शन प्रत्यक्ष होते हैं। पति के सिद्धि प्राप्त करने के लिये काननवासी होने पर वह अपना रहन-सहन ही सन्यासियों-जैसा नहीं बना लेती है, वरन् वह स्वयं को भी, अपने पति की अवस्था का ध्यान कर वैसा कर लेती है। भारतीय नारी के लिये यह उचित नहीं कि वह पति को वैराग्यावस्था में देखकर स्वयं को राजसी ठाठ में रखे। इसी लिए वह अपने पति की सन्यासावस्था की कल्पना कर स्वयं को भी वैसा बनाने का प्रयास करती है। यहाँ तक कि वह अपने केशों को भी काट डालती है—

> जाओ मेरे सिर के बाल
> अलि, कर्त्तरी ला मैंने क्या पाले काले व्याल !

जिन बालों को पति की उपस्थिति में वह कई बार सँभालती थी, उन्हीं को, अपने प्रियतम की अनुपस्थिति में वह व्याल कहकर सम्बोधन करती है। कितनी आदर्शवादिता, पति-परायणता टपकती है इस पद से। पति-आज्ञा के बिना वह प्रासाद त्यागने में असमर्थ है, अतः वह राज-प्रासाद में ही योगाभ्यास करती है। यह जीवन के वियोग को विरहिणी के रूप में न झेलकर तपस्विनी के रूप में झेलती है। यही उसका आदर्श है। भारतीय नारी रहने के कारण वह पति से अपना सम्बन्ध अटूट मानती है। उसका मत है—

> चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
> स्वामी ! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।
> मिथ्या भय है जन्म-जरा के, इन्हें न उनमें मानो।
> चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

कुसुम सी कोमल और वज्र सी कठोर गोपा वास्तव में नारी
की साकार प्रतिमा है। उसके त्याग एवं संयम की छटा चरो ओ
बिखरी पड़ी है। आगे चलकर इस त्याग ने वह रूप अपनाया
कि समस्त संसार के अन्य त्याग उसी में समा गये हैं।

गोपा में आत्म-गौरव की भावना हम पराकाष्ठा पर पहुँची
देखते हैं। इसी कारण अमिताभ के कपिलवस्तु में पधारने पर
वह स्वागत-हेतु स्वयं जाना स्वीकार नहीं करती। इस कारण
स्वयं स्पष्ट कहती है—

> क्या देकर मैं तुमको लूँगी !
> देते हो तुम मुक्ति जगत को,
> प्रभो तुम्हें मैं बन्धन दूँगी।

× × × ×

इस प्रकार हम देखते हैं कि यशोधरा में नारी हृदय की
अभिव्यक्ति हुई है।

गुप्तजी की यशोधरा का सबसे बड़ा मूल्य इसी बात में है
उसमें नारी के यथार्थ रूप की व्याख्या भावात्मक पद्धति पर
है। नारी के दोनों रूपों, अर्थात् (पत्नी तथा जननी) को समझ
का प्रयास एक ही स्थान पर किया गया है, ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है

उस काल के समस्त प्रभावों को अपने में लीन करती हु
यशोधरा का काव्य-स्रोत प्रवाहित हुआ है, फलस्वरूप रहस्य-व
के गीत युग-युग की वस्तु होते हुये भी वह अपना अस्तित्व प्रथ
रखकर उनसे बहिष्कृत नहीं हो सकी है। एक शब्द में कह स
है कि कला-प्रासाद की एक आवश्यक पूर्ति यशोधरा द्वारा हुई है
१९३३ में गुप्तजी से एक ऐसे ही काव्य की आशा थी। ऐसे स
में जब कि जनता की यह शिकायत थी कि राष्ट्र भाषा हिन्दी में
और पश्चिमी साहित्य का बहुत सा समावेश हो रहा है, अपना

मात्र भी नहीं—गुप्त जी ने यशोधरा हिन्दी-साहित्य को दी जो कि अतीत के गौरव का एक स्वर्ण-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि यशोधरा का स्थान किसी भी प्रकार से साकेत तथा भारत-भारती से कम नहीं। उसका साहित्यि मूल्यांकन करने के लिये निम्न पंक्तियों को सदा स्मरण रख चाहिए—

> अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
> आँचल में है दूध और आँखों में पानी !

द्वितीय भाग

शब्दार्थ एवं व्याख्या

लेखक—
श्री परमेश्वर दीन वर्मा एम०, ए०

शब्दार्थ एवं व्याख्या

पृष्ठ ११—नीरजनाभ—(नीरज+नाभ) कमलनाल से विष्णु भगवान्। अभिताभ-अधिक आभा वाले, यहाँ पर बुद्धदेव से तात्पर्य है।

पृष्ठ १२—नवनीत = मक्खन । तक्र = मठा । वक्र = टेढ़ा । नक्र = मगर । परित्राण = रक्षा । शक्र = इन्द्र । अन्ततोगत्वा = आखिर बार ।

घूम रहा·····················सुर-शक्र ।

अर्थ—गौतम संसार की निस्सारता को देखकर सोचते हैं कि संसार परिवर्तन शील है और इसका क्या ही चक्कर है ? हमारे जीवनरूपी दूध को सदैव यह संसारी चक्कर मथता रहता है जिसके कारण सुख तथा सार रूपी मक्खन का कोई पता नहीं, चलता बल्कि छाछ रूपी निस्सार वस्तुएँ ही शेष रह जाती हैं। इस संसार में जब तक जीवन है तब तक इसी प्रकार कष्ट उठाते रहना पड़ेगा। अब तक किसी प्रकार का प्रभाव पिसते रहने पर भी नहीं आया है और जैसा पहले था वैसा अब भी है। यह कष्ट-प्रद चक्कर जो बराबर घूम रहा है इसे हम आखिरकार कब तक सहन करते रहें।

हम किस प्रकार इस बन्धन से मुक्ति पा सकते हैं ? इन सांसारिक झमेलों से छूटने के लिये किन देवी-देवताओं की आराधना करें ? उन देवी-देवताओं को मनाने से लाभ ही क्या हो सकता है, वह स्वयं ही मुसीबतों से परेशान हैं। क्या ही विचित्र सांसारिक चक्कर है जिसमें देवता-इन्द्र आदि भी कुशल से नहीं हैं।

पृष्ठ १३—शब्दार्थ—जरा = बुढ़ापा । वर्ण = रंग । सुवर्ण =

सोना। चेतन = आत्मा । रन्ध्र पूर्ण—घट = छेददार घड़ा। मननीता = मनचाहा। तीता = कटु।

देखी मैंने.............................मैंने न तरा।

अर्थ—गौतम किसी बूढ़े मनुष्य को देखकर विचार करते हैं कि क्या यह बुढ़ापा वास्तविक है! ओह! तो क्या मेरी सुन्दर यशोधरा भी एक दिन वृद्ध हो जायेगी। और क्या उसका वह स्वर्ण रंग भी इस मिट्टी में विलीन हो जायगा? मेरी यह हरी-हरी फुलवारी किसी दिन सूख जायगी अर्थात् क्या मेरा यह छोटा सा फूला-फला परिवार भी नष्ट हो जायगा! जिस प्रकार रस्सी से जकड़ा हुआ जानवर लाचार है उसी प्रकार यह सैकड़ों रोग मनुष्य को जकड़कर लाचार बनाए हैं। परन्तु धिक्कार है हमारे जीवन को यदि सामर्थ्य होते हुए भी हमारा प्रिय चेतन नष्ट कर दिया जाय। हममें वह शक्ति है जिससे हम इन रोगों को नष्ट कर सकते हैं। क्या यह सब ऊपरी ठाठ-बाट का दिखावा है, वास्तविकता कुछ भी नहीं है। फिर यदि इस सूने भव सागर को भी न पार कर सके तो यह जीवन व्यर्थ है, अर्थात् इस जीवन में यदि अपनी आत्मा का उत्थान न किया तो यह जीवन बेकार ही नष्ट हो जायगा।

मरने को.............................तीता है।

अर्थ—क्या हम सभी मरने के लिये ही जीवित हैं! हमारा जीवन क्षीण होता ही जा रहा है, फिर तो हम मरे हुए के ही समान हैं! अर्थात् जन्म ग्रहण करना ही मृत्यु को प्राप्त करना है, क्योंकि छेददार घड़े का भरोसा ही क्या! उसके भरे होने पर भी उसे खाली ही समझना चाहिए। जीवन यों ही बीतता चला जाता है। यह भी पता नहीं चलता कि सुख-दुःख में समय कहाँ बीत गया! अन्त में दुखद परिणाम ही मिलता है, और मनुष्य हाथ करके रह जाता है तथा सोचने लगता है कि कोई भी उत्तम कार्य न किया। पता नहीं चलता कि वह प्यारा जीव कहाँ चला जाता

है। उसकी मैं खोज करूँगा जिसकी प्राप्ति के बिना संसार इतना नीरस बना हुआ है। कोई न कोई वस्तु ऐसी सुखदायी अवश्य होगी, उसी को मैं अब तलाश करूँगा।

पृष्ठ १४=भुवन=संसार। भावने=अच्छा, प्रिय। भीता= डरा हुआ। अधिवासी=निवासी।

भुवन..........................गीता है।

अर्थ—ऐ प्रिय भोली-भाली इच्छाओ! अब तुम क्यों भय खा रही हो। अब तुम्हें जीतने के लिये मैं आ गया हूँ। अपने जीवन से पूर्व ही अपनी मुक्ति बनाने के लिये गौतम का एक मात्र उपदेश है।

पृष्ठ १५=अनिवार्य=आवश्यक। दाम=क्रम, बारी। अन्तराम=विघ्न।

बता जीव..........................अन्तराम।

अर्थ—हे जीव! कह, यह जीवनरूपी पुष्प क्या इसी लिये है कि मृत्यु अपनी इच्छा से समय और कुसमय जब भी चाहे खाए अर्थात् इस बालपन और यौवनमय जीवन को मृत्यु अपनी इच्छा से नष्ट करे। क्या इस जीवन का उद्देश्य एक मात्र मरण ही है। एक बार जन्म लेकर मरना तो कुछ ठीक मालूम होता है, परन्तु इस बार-बार के मरने को धिक्कार है तथा सदैव उस मृत्यु के फन्देमें जकड़े रहने को और भी धिक्कार है। हे सिद्धार्थ! तू क्यों हार मान कर बैठता है, उठ और कुछ उपाय कर। किसकी सहायता तू चाहता है? तुझे कोई भी सहायक न मिलेगा। इस कारण तू आगे बढ़कर अपनी अन्तरात्मा के बाधकों को, काम, क्रोध, लोभ सभी को नष्ट करने में लग जा। तुझको सिद्धि की प्राप्ति तभी हो सकेगी।

विशेष—सांसारिक माया के बन्धन में फँस कर मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को भूल बैठता है। इसी से इस जीवन को नाना

प्रकार की योनियों में पड़कर कष्ट झेलने पड़ते हैं। सिद्धार्थ इस जीवन को धिक्कारते हैं और स्वयं कहते हैं कि मनुष्य स्वयं ज्ञान की प्राप्ति करके उस मरण के फंदे से छुटकारा पा सकता है।

भव – भुक्ति = जन्म-मरण का दुःख। मानस हंस = मनरूपी हंस। शुक्ति = सीप।

पृष्ठ १६—महाभिनिष्क्रमण = महाप्रयाण। अकाम = इच्छाओं से परे। क्षणभंगुर = थोड़ी देर में नष्ट होनेवाले। धाम = घर, स्थान। जागरूक = जाग्रत् अवस्थावाला।

आज्ञा लूँ ………………राम-राम!

अर्थ—सिद्धार्थ अपने आप सोचते हैं कि मैं इच्छा रहित हूँ, मैं आज्ञा तुझसे लूँ कि क्या मैं जाऊँ अथवा मैं तुझे आज्ञा दूँ कि तू यहीं रह और कल्याण हेतु आने के समय तक तू मेरी प्रतीक्षा करना। हे संसार! अपने इस स्वप्नवत् जाल को बेकार में मुझ पर न फेंक, इसका प्रभाव मुझ पर कदापि नहीं पड़ सकता। मुझे अब होश है, इस अपने राज-पाट, धन-धाम, महल को ले। हे नष्ट होनेवाले संसार तुझे मेरा अन्तिम नमस्कार है।

पृष्ठ १७—कमनीय = सुन्दर। गात्र = शरीर। कंकाल = ठठरी, हड्डी। प्रच्छन्न = गुप्त। भावी = होने वाला। झटिति = शीघ्र।

प्रच्छन्न………………राम-राम!

अर्थ—हमारे इस जीवन में सुख केवल देखने भर को ही है, शरीर के अन्दर रोग भरे हुए हैं। यह सांसारिक भोग विलास भी दुःख रूप हैं। यह आकर्षित करनेवाला संसार दुःखदायी है। जीवन में यौवन का मिलन ही मलिन के वियोग की सूचना देता है। अर्थात् संसारी का किसी न किसी दिन वियोगी होना पड़ता है संसार के लोग लोभ, मोह में फँसकर अपनी वास्तविक और शुद्ध स्वरूप को भूल जाते हैं। हे नष्ट होनेवाले संसार! तुझे नमस्कार है।

मैं सूँघ·························राम-राम।

मैं सभी फूले हुए पुष्प सूँघ चुका हूँ, अर्थात् इस संसार के सभी रंगों में घूम चुका हूँ और वह खिले हुए भूमते पुष्प भी नष्ट होने ही वाले हैं। पुष्पों के पश्चात् उनमें आए हुए फलों को चख चुका हूँ। यह जड़-सहित आम एक दिन सड़ जाने को है, अर्थात् सभी खुशियाँ इस संसार की किसी न किसी दिन नष्ट हो जाने को हैं। हे नाशवान् संसार! तुझे नमस्कार है।

पृष्ठ १८—सुन-सुन·····················राम-राम।

मैंने सांसारिक सुखों के विषय में काफी सुना है और उपभोग भी कर लिया है। इससे या तो रोग पैदा होते हैं अथवा द्वेष। अर्थात् सारा संसार द्वेष-युक्त है। सारा संसार गहरी नींद में भूम रहा है, वास्तविक ज्ञान को भूला बैठा है और उसे कुछ भी पता नहीं है। हे नाश होनेवाले संसार! तुझे प्रणाम है।

परितृप्त=संतोष। काय=शरीर। पाम=नीच। वीतराग=रोगों से दूर। क्षाम=क्षीण, दुबला।

खुजली में खुजलाने से मिटती नहीं, बल्कि बढ़ती है। इसी प्रकार विषय-भोगों के भोगने की सदैव इच्छा प्रबल होती है और उनसे सुख तथा शांति की प्राप्ति नहा होती है।

पृष्ठ १६—वित्त=धन। भ्रान्त=घुमाया हुआ, भूला हुआ। आर्त-दुःखी। विनिवृत्ति हेतु=दूर करने के लिये। केतु=झंडा।

तू दे सकता·······················राम-राम।

अर्थ—हे संसार! तुझसे अगाध सम्पत्ति हमको मिल सकती है, परन्तु उसके चक्कर में मैं फँस नहीं सकता। तेरी विषय-वासनाओं के चक्कर में पड़कर क्या इधर-उधर भटकता फिरूँ। मुझको तो अपना और तेरा अस्तित्व मालूम हो गया है। इसलिये हे संसार! तू मेरा पीछा छोड़ दे, सामने से भी हट जा, मेरे रास्ते का रोड़ा न बन, और मुझको अमरत्व प्राप्त करने के लिये जाने दे। हम मेरे हाड़-

पृष्ठ २१—प्रतिभू=ज़मानत में पड़नेवाला । अमन्द=उत्तम । विधि=ब्रह्मा । वाम=उल्टा । मार=तत्त्व पदार्थ । शुभे=शुभ लक्षणों से युक्त । दुल=दुलारा । दाम=बन्धन ।

पृष्ठ २२—घन=गहरा । व्याल=साँप । विपाक्त=विषपूर्ण । भाम=स्त्री । छन्दक=सारथी का नाम । अभियान=प्रस्थान, यात्रा । याम=समय ।

छन्दक············राम-राम ।

सारथी छन्दक ! उठकर अपने श्रेष्ठ घोड़े को शीघ्र तैयार करो । न तो इस प्रकार मेरे प्रस्थान की बात सुनकर आश्चर्य करो; बस तुरंत घोड़े को सजाओ । आज मैं मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ । रात्रि का यह समय ही मेरा शुभ-समय है । इस क्षण-भगुर संसार से मैं बिदा होता हूँ ।

भाण—नाटक । प्रयाण=प्रस्थान, गमन । वात=हवा, वंश-जात=वंश में उत्पन्न ।

पृष्ठ २३—आली=सखी

पृष्ठ २४—सज्जा=साज-शृंगार । व्याघात=चोट । पथ-बाधा रास्ते का विघ्न । पण=व्यवसाय, होड़ ।

स्वयं··········क्षात्र-धर्म के नाते ।

क्षात्र-धर्म का निर्वाह करने के लिये अपने पति को सुसज्जित कर के युद्धस्थल के लिए, जहाँ कि प्राणों की होड़ लगी होती है, स्वयं ही हम स्त्रियाँ विदा कर देती हैं । फिर यह केवल सिद्धि-प्राप्ति के हेतु की जानेवाली यात्रा थी; मैं उन्हें क्यों रोकने लगती ?

पृष्ठ २५—उपालम्भ=उराहना । अपूर्व=जो पहिले कभी न हुआ हो ।

पृष्ठ २६—श्रुति-पथ=कान का मार्ग । कपाट=किवाड़ । निःश्वास=गर्म साँसें । मौन रहना=चुप रहना ।

पृष्ठ २७—नन्द=सिद्धार्थ का सौतेला भाई । प्रम्प=·

होनेवाला । मार=बोझ । सम्प्रति=इस समय, आजकल । राहुल=महात्मा बुद्ध का पुत्र । थाती=धरोहर; वार=न्यौछावर ।

पृष्ठ २८—महाप्रजावती=सिद्धार्थ की विमाता, वत्स =बेटा । ज्वाला=दुःखों की अग्नि । जरा=बुढ़ापा ।

पृष्ठ २६—रूपक=नाटक, ठाट-बाट । ताल=गाने-बाजों की गति ।

खींचा—बाण-समान !

धनुष की प्रत्यंचा को जितना ही खींचा जाता है वह धनुष चलाने वाले ही के अधिक निकट आती जाती है तथा पूरी खिच जाने पर उस पर लगा हुआ बाण पूरी तेज़ी के साथ चला जाता है ! सिद्धार्थ का चला जाना भी ऐसा ही था । शुद्धोदन ने खींच कर उन्हें अपने पास रखने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वे तीर की तरह पूरी तेज़ी के साथ तुरन्त चले गए ।

पृष्ठ ३०—ललाम=सुन्दर । धीरा=धैर्यवाली । चरों=गुप्तचरों । प्रतिकूल = उनकी इच्छा के विरुद्ध ।

पृष्ठ ३१ प्रौढ़=समझदार हित=श्रेष्ठ मार्ग । मान्य=स्वीकार । प्रगति = उन्नति ।

तू है सती·························हाथ में ।

शुद्धोदन का धारणा है कि सेवकों को चारों ओर भेज कर सिद्धार्थ को ढूँढ निकाला जाए और वापिस बुला लिया जाए; यशोधरा इस प्रयास को अनुचित समझती है, घरवालों को चाहिए कि उनकी सिद्धि की मंगल-कामना करें । अन्त में शुद्धोदन कहते हैं कि "बेटी यशोधरा ! तू सती है और पति की अनुगामिनी पत्नी होने के नाते यह बोल तेरे अनुरूप ही हैं कि तू अपने पति की इच्छा को श्रेष्ठ मानकर उसका आदर करे; परन्तु मैं तो पिता हूँ, मुझे उसकी इच्छा की परवाह नहीं, क्योंकि मैं उसकी इच्छा का आदर करने को बाध्य नहीं हूँ ; मुझे तो उसके भविष्य की, उसके भले-बुरे

की चिन्ता है। मेरा बेटा सिद्धार्थ अभी नासमझ एवं सरल है, इसीलिए बहक गया है। उसको खोज निकालने के लिए मैं कोई उपाय उठा न रखूँगा।" ससुर की बात को सुनकर यशोधरा कहती है, "मेरे विचार से आप उनसे अधिक सरल और नासमझ हैं, जो हित को अनहित समझे हैं। आप यह समझ ही नहीं रहे हैं कि वे कितनी महान् वस्तु को प्राप्त करने के लिए गए हैं।"

पृष्ठ ३२ प्रजाजन=जनता। परकोटा = घेरा, बाहर दीवारी। विभूति=ऐश्वर्य, छन्दक=सारथी का नाम। कन्थक=घोड़े का नाम जिस पर सवार होकर सिद्धार्थ गए थे। शल्य पृष्ठ=वाली पीठ।

पृष्ठ ३३—सुगति=मरने के पश्चात् अच्छी गति। रमाई=लगाई। भाई=अच्छी लगी। शिखा भी न भाई=वे पूर्ण संन्यासी हो गए। केश=बाल। सुरभि=सौन्दर्य। निवेश=निवास।

पृष्ठ ३४—कर्त्तरी=कैंची। व्याल=सर्प,सुन्दर काले बालों की उपमा सर्प से दी जाती है। हेमहीर = सुवर्ण, हीरा। चिरकाल= हमेशा। मलिन = मैली। लाल=एक अमूल्य रत्न तथा पुत्र। लाल शब्द पर श्लेष है। अंगराज=चन्दन, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि का सुगन्धित लेप। भाल = मस्तक।

पृष्ठ ३५—योग=अवसर, संयोग। वाद्य=बाजा।

मिला..........उनको सब लोग।

यशोधरा को इस बात का दुःख है कि जाते समय वह अपने प्रियतम से मिल न सकी। बड़ा ही अच्छा होता यदि वह उनको गा-बजाकर खुशी-खुशी विदा करती! वह कह रही है—"हाय! इतना भी मौका न मिला कि मैं अपने प्रियतम को हँसकर विदा कर देती, और ऐसे महान् उद्देश्य के लिए जाते हुए पति का स्वेच्छा-पूर्वक वियोग सहने का गौरव प्राप्त कर सकती। यदि ऐसा होता तो न तो मुझे आज इस तरह आहें ही भरनी पड़ती और न मुझे पति-प्रेम का इतना दुःख ही भोगना पड़ता। पर होता कैसे! यह

संयोग तो केवल पूर्व-जन्म के पुण्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। मेरे भाग्य में तो रोना लिखा था। यह मेरे पूर्व-जन्म के कर्मों का ही फल है जो चलते समय उनसे मिलने का संयोग भी न प्राप्त हो सका। मैं उन्हें मङ्गल-पत्र के साथ हर्ष विदा कर आती, परन्तु क्या करूँ, उन्होंने मुझे इस योग्य न समझा और वे चुपचाप चले गए; इस कारण मैं लज्जित हूँ। लौटने पर जब सब लोग उनका स्वागत करेंगे, उस समय मैं कैसे मंगल-गीतों के साथ उनके सामने जाऊँगी!

पृष्ठ ३६—संलीन=विलीन। अभिनन्दन=यथोचित सत्कार। दैन्य=दुःख। वज्रादपि=वज्र से भी अधिक। कुसुमादपि=फूल से भी अधिक।

पृष्ठ ३७—सराहा=बड़ाई की। थाहा=थाह ली। नापा=परीक्षा ली। शौर्य-सिन्धु=शूरता का सागर। अवगाहा=डुबकी लगाया। मंथन=छान बीन।

विकृत=बिगड़ा हुआ। विकारी = दोषी।

मेरे रूप..............विकारी।

ऐ मेरे सौन्दर्य! यदि अपने ऊपर तुझको गर्व है तो मैं बता देती हूँ कि तेरा गर्व व्यर्थ है। यदि तुझ में सचमुच कोई गर्व की बात होती, तो उन्हें बाँध न रखता। (यशोधरा को अपने रूप-रंग—यौवन एवं सौन्दर्य का व्यर्थ ही गर्व था।) वह कई बार कह चुके थे कि "संसार की भाँति रूप-यौवन भी परिवर्तनशील है। जो आज है। वह कल न रहेगा। देखो न, सूर्य की प्रखर किरणों से आलोकित दिन संध्या के अंधकार में दब कर सहज ही ढल जाता है। संसार की नश्वरता का एक सुन्दर उदाहरण है। सम्भवतः मेरा हृदय ही दोषी था, जो उनकी इस बात का समुचित सम्मान न कर सका।

पृष्ठ ३८—विश्रुत=प्रसिद्ध। इन्द्रियासक्ति=वासनाओं में लिप्त। चेरे=दास। विरति=वैराग्य। भूरि=धन्य, श्रेष्ठ। वधू-वंश=स्त्री-समाज, अप्सरा-विघ्न=अप्सराओं द्वारा डाली जानेवाली बाधाएँ।

जाओ नाथ..........यशोधरा करधारी।

हे नाथ! जाओ और अमरत्व को प्राप्त करो। मैं इस जन्म-मरण के चक्कर में—इसी जगत् में—रहकर सुखी हूँ। तुम जीवनमुक्ति को अपनी चिर सहचरी बनाना, मैं तो तुम्हारी दासी रहकर ही परम सुखी हूँ। तुम तपस्या करो और मैं विरहाग्नि की ज्वालाएँ झेलूँ, मुझे तो एक ही संतोष है कि जब-जब लोक तुम्हारे गुणों का गान करेगा, तब-तब उनके साथ मेरी करुण-कहानी की भी चर्चा कर लिया करेगा। लोग जब यह कहेंगे कि सिद्धार्थ इतने बड़े तपस्वी थे, तब उन्हें यह भी कहना पड़ेगा कि उनकी पत्नी यशोधरा ने उनके वियोग में विरहाग्नि की अनेकों ज्वालाएँ सहन की थीं।"

पृष्ठ ३६ · वंचित=रहित। चर्म-चक्षु=चमड़े की बनी हुई ये आँखें। प्रतीत=ज्ञान।

पृष्ठ ४०—मनस्ताप = मन का ताप। कराल = भयंकर। सदय=दयालु। विरुद=यश-कीर्तन। स्यन्दन = रथ। कपाल = भाग्य। जाया = पत्नी।

मरण सुन्दर..........जल जल कर काया री।

हे सखी! मानों मौत मुझे अत्यन्त प्रिय लगने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मुझ से डर कर मेरी शरण में आ गई है। मेरे दुःख को देखकर वह भी दुखी हो गई है और अपनी कठोरता छोड़ कर मेरी कृपालु एवं भली दयावान् सखी बन गई है। अर्थात् मौत मेरे सामने हर समय नाचती है, परन्तु फिर भी मेरी तरफ अपना कठोर हाथ नहीं फैलाती है। मेरे विरह ने मृत्यु का शृंगार कर दिया है। विरह के कारण मेरी आँखों से निकलनेवाले आँसुओं की उसने माला पहिन ली है, अर्थात् यशोधरा सदैव रोती रहती है और वह मरणासन्न हो गई है। चारों ओर बोलनेवाले पक्षी मानों मृत्यु का यशोगान करते रहते हैं। खिले हुए फूल, समुद्रों की चंचल लहरें तथा रंगरेलियाँ करता हुआ शीतल, मन्द सुगन्ध पवन, ये सब

वस्तुएँ मेरे लिए दुःखदायी बन गई हैं। ऐसा मालूम होता है कि मानों मार ही डालेंगी। यह मेरा सौभाग्य है जो मैं मृत्यु के इस रूप में साक्षात् दर्शन कर रही हूँ। लेकिन फिर भी मेरे भाग्य में इनका भोगना कहाँ है? यदि प्रियतम न आते, तो मौत तो आ जाती। आज यमराज ने भी मेरी तरफ से मुँह मोड़ लिया है। मैं अब केवल पत्नी ही नहीं, एक माता भी हूँ। स्वामी मुझे मरने का भी अधिकार न दे गए। अपने पुत्र राहुल के लालन-पालन की मेरे ऊपर जिम्मेदारी छोड़ गए, ताकि मेरी देह तिल-तिल करके जलती रहे, अर्थात् बहुत दिनों तक उनके विरहाग्नि में तपती रहूँ। साराश यह है कि अपने विरह-जन्य दुःखों का वर्णन करके यशोधरा यह कहना चाहती है कि "मेरी मौत भी तो नहीं होती है।" उसके मत से वह राहुल के लालन-पालन के लिये ही जीवित है।

पृष्ठ ४१ वाष्प = भाप। गेह = घर। ऊष्मा = गरमी। पृष्ठ ४२ उद्भव = उत्सव, आनंद, ऊधो। जठर = बूढ़ा। विश्व-वेदना = संसार के कष्ट। शतधा = सौ सौ धाराएँ। कान्ति = चमक। शरदातप = शरदकालीन सूर्य का प्रकाश।

इनकी .... बनी वही।

मुझको संसार के कण-कण में संसार की प्रत्येक वस्तु में अपने प्रियतम का ही रूप दिखाई देता है। चन्द्र की चाँदनी उनके ओजपूर्ण मुखमण्डल पर खेलनेवाली शान्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शरद काल के सूर्य का सुहावना प्रकाश उनकी विश्व-व्यापी क्रान्ति का प्रतीक है। छन छन कर आने वाली रंग-बिरंगी स्वच्छ किरणों में मुझे उनके मिलन की आशा दिखाई देती है। जलाशयों के कमल मानों उनके आगमन के कारण प्रसन्न होकर खिल उठे हैं और कमलों के ऊपर विहार करनेवाले मराल मानों अपनी मधुर कल-कल ध्वनि द्वारा उनका गीत गा रहे हैं। परन्तु हे मेरे बौरा!

तू क्यों मुर्झाया पड़ा है ! जब सारा संसार प्रसन्न है, तब हे मेरे मन ! तू ही क्यों उदास है। मेरे हृदय की कली अभी तक मुरझाई हुई ही है।

पृष्ठ ४३—पुंज=समूह। हेमपुंज=गहरा पाला। गहीं=गहस्थ की।

पेड़ों ने..................दूध-दही।

शिशिर ऋतु का यहाँ वर्णन है। पतझड़ आ गया है। यशोधरा को संसार की प्रत्येक वस्तु प्रियतममय ही जान पड़ती है। प्रियतम के जाने के मार्ग का वृक्षों ने भी मानो अनुकरण कर लिया है। प्रियतम ने राज-पाट छोड़ा, पेड़ों ने पत्ते छोड़ दिए, आँसुओं के कारण यशोधरा की दृष्टि धुंधली सी हो गई है। सबकी नज़र को धुंधला बनाने के लिए ही मानो संसार में कोहरा छा गया है। घर-घर में अंगीठियाँ जल रही हैं। वह मानो उसके तपस्वी स्वामी के यज्ञ-कुण्ड के लघु रूप हैं। चारों ओर तेज आग जलती है, फिर भी उसकी कपकपी अभी तक बन्द नहीं हुई। सर्दी के कारण पानी जम कर रुक गया है, परन्तु यशोधरा के घर दिनों से बहनेवाले आँसू नहीं रुके।

तन्तु=तार। पल्लव=पत्ते। निर्झर=झरने। दिन-पुष्प=सूर्य।

पृष्ठ ४४—सुरभि = पृथ्वी। अम्बर=आकाश। मृदु मृदुल। समीर=वायु। सहनाई=शहनाई। कण्टकित=अंकुरित। कपोल=गाल। अर्घ्य=पूजा का पानी।

ढलक न जाए.................गुणशाली।

: हे गुणों के सागर, जल्दी आ जाओ। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे आने के पहिले ही मेरे प्राण निकल जाएँ और तुम्हारे स्वागत के लिए सजाया हुआ यह पूजा का सामान यों ही रखा रह जाए।

कुंज=वृक्ष-लतादि से ढका हुआ स्थान। अंशु=सूर्य। चीर= तोता। शिखी=मोर। चातक=पपीहा। तृण=घास, तिनका।

उनका.................मर्मर यहाँ।

यशोधरा कहती है कि वृक्ष लताओं आदि से ढकी हुई मण्डप के समान उनकी यही पहिलेवाली कुटी है और उस पर पहिले की ही भाँति सूर्य की किरणें रंगरेलियाँ करती रहती हैं; कुटी के चारों ओर कोयल, तोता, मोर आदि पक्षीगण पहिले की तरह अब भी कलि-कूजन किया करते हैं, पपीहा भी हर घड़ी 'पीउ-पीउ' की रट लगाए रहता है। सारांश यह कि समस्त साज-समाज पहिले जैसे ही हैं, परन्तु उनमें पहिले के समान आकर्षण नहीं है, वे सोये हुए से विधवा स्त्री अथवा राजा से रहित राज्य के समान कांतिहीन मालूम होते हैं। हे सखि! यहाँ के पुष्पों की सुगन्धित वायु यदि कदाचित् उनके पास अनायास जाकर यहाँ की याद दिला दे, तो फिर!

पृष्ठ ४५—दरक कर=दबाव से फट कर। दाड़िम = अनार। रट=रटना, घट=घड़ा, शरीर।

"मुझसे पहिले—इस घट की" का आशय है कि पहिले सबका भला हो, उसके बाद मेरा भला हो।

पृष्ठ ४६—मल=मैल, पाप। क्षीर=दूध।

पृष्ठ ४७—परिपुष्ट=बलवान्। पात्र=योग्य। रुष्ट=अप्रसन्न। तुष्ट=प्रसन्न। छौना=पशु का बच्चा।

जीर्ण=पुरानी। तरी=डली, पेंदा। भूरि भार=उस पर इतना बड़ा बोझ। प्रखर=तेज। पद-पद पर=कदम-कदम पर।

तन्तु= तार, तागा। घोर जन्तु = हिंस्र पशु। भेरी = एक बाजा। तुच्छ = छोटा। गात्र = शरीर।

क्रीड़ा = खेल-कूद। अधीर = व्याकुल। व्रीड़ा = लज्जा।

पृष्ठ ५०—चक्र = चक्कर भूतल = पृथ्वी। = भानु=सूर्य। दीप=टापू। शलभ = पतंगा, कीड़ा। खलता है = बुरा लगता है। अश्रुसिक्त=आँसुओं से सींचा हुआ। साधक=तपस्वी।

कुशल..............देखूँ कब फलता है।

...बुरा समय भी किसी न किसी तरह कट जाता है, परमात्मा की यह क्या कम दया है। कठिनायों को झेलते हुए साधना करने वाला व्यक्ति मनोवांच्छित फल को प्राप्त करके ही चैन लेता है। यशोधरा दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है, हो जाने दो, उसका पुत्र राहुल दिनोंदिन बढ़ता आ रहा है। आँसुओं के बल पर पाला-पोषा नन्हा बालक राहुल देखूँ कब तक शक्तिशाली हो पाता है।

अलिन्द=मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा। भीत होना=डर जाना। प्रतिबिम्ब=परछांई। मृषा=झूठा। भ्रांति=धोखा, भ्रम।

पृष्ठ ५१—सद्=ताजा। दुग्ध-फेन सी शैया=दूध के फेनों जैसे स्वच्छ बिस्तरों वाली चारपाई। प्रसू=माता। विरक्ति=उदासीनता।

पृष्ठ ५२—प्रवाह=बहाव, शब्द-धार। रसाल=आम।

पृष्ठ ५३—निष्फल=व्यर्थ। शोध=खोज। निःश्वास=आह भरना।

पृष्ठ ५४—ममत्व=स्नेह। वराक=बेचारा। पाथेय=राह या मार्ग का भोजन।

पृष्ठ ५५—जगत्प्राण=संसार को जीवित रखनेवाला। लीन होना=समा जाना। मित=परिमित, थोड़ी। माप=नाप। अनुपात=अनुसार। निरुद्ध=घिरा हुआ। सत्ता=स्थिति। विजन=एकान्त स्थान। निश्चलता=शान्ति।

पृष्ठ ५६—स्वस्थ=तन्दुरस्त। अधिवासी=रहनेवाला, निवासी। मान्य=आदरणीय। पितामह=बाबा। रीते=व्यर्थ, बेकार। थल-वासी=पृथ्वी पर रहनेवाले। विधाता=परमात्मा। मानव=मनुष्य।

पृष्ठ ५८—परितृप्ति=सन्तुष्टि, मन भरना। वंचित=रहित। दैन्य=कायरता। दर्प=अभिमान।

पृष्ठ ५९—चेरी=नौकरानी। हटी=जिद्दी। सुरभि=सुन्दर, सुगन्धित पवन। हिम-बिन्दु=ओस की बूँदें।

पृष्ठ ६०—कमकमन=सुन्दर कामिनी। नर=नम्र, नेत्र। करुणा-भरी=दुख भरी। आर्खेटक=आखेट करनेवाला, शिकारी। आहत=घायल। तात=पिता। रक्षी=रक्षक, रक्षा करनेवाले। बढ़ चली कहानी=बात बढ़ चली। विवाद=सवाल-जवाब। सदय=दयावान्। निर्दय=दयाहीन, कठोर हृदय। उभय=दोनों। आग्रही=आग्रह करनेवाले। स्वकिंवद=अपनी अपनी बात। न्यायालय=अदालत। व्यापक हुई कहानी=बात चारों ओर फैल गई।

हुआ·············व्यापक हुई कहानी।

बहेलिया का हृदय कठोर था, वह पक्षी के प्राण लेने पर तुला था। तेरे पिता का हृदय अत्यन्त कोमल था, वे उसके प्राणों की रक्षा करने का विचार कर चुके थे। दोनों में कहा-सुनी, वार्तालाप होने लगा। दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए थे और अपने-अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिये विभिन्न तर्क उपस्थित कर रहे थे। जब आपस में कोई निर्णय न हो सका, तो बात अदालत में गई। यह बात सबके कानों में पड़ी और इसकी चारों ओर चर्चा फैल गई।

पृष्ठ ६१—निर्णय=फैसला। न्याय पक्ष लेता है किसका=क्या फैसला होना चाहिए। निरपराध=निर्दोष। उबारे=बचावे। भक्षक=खा जानेवाला। अंचल धन=गोदी की शोभा। पुष्कर=कमल। पार्श्व=बगल। नासा=नाक। पुट=पर्त। उभय=दोनों। विमोदन=आनन्द देनेवाले। व्यथा-विमोदन=व्यथा को दूर करनेवाले।

पृष्ठ ६२—मन्द=धीमी। सुरपदन=सुन्दर स्फुरण। तन=दुखी। नंदन=पुत्र। अलक=बाल, लट। छद=ढक लेनेवाली वस्तु। रद=दाँत। पुलक-पूर्ण=आनन्द-पूर्ण।

पृष्ठ ६३—निशि=रात्रि। जवनिके=यवनिका। सज्जा=शृंगार। नियति=भाग्य। संसृति=संसार। वेला=समय, काल।

निशि की अँधेरी·············जो रही।

भविष्य अंधकारमय-सा है। उसके गर्भ में क्या हो, इसलिए मैं आज शान्त हूँ। मेरे भाग्य निरन्तर निर्मित होते रहते हैं। ग्रह-दशा का हेर-फेर ही भाग्य-फल है और ग्रह निरन्तर चक्कर लगाया करते हैं। मैं व्यर्थ ही फल-प्राप्ति का बोझ अपने मन पर रखे हुए हूँ। जो भाग्य में लिखा है वही होगा। तरह-तरह की आशायें करके तथा भाँति-भाँति के विचार बाँधकर मैं व्यर्थ ही परेशान होती रहती हूँ। दुःख और सुख दोनों ही अवस्थाओं में सब लोग दुःखी रहते हैं सुख दुःख की बातों का सब लोग हर समय रोना रोया करते हैं। और संसार के प्राणी अपनी सुध-बुध खोए किंकर्तव्य-विमूढ़ बने रहते हैं। मैं जाग रही हूँ, परन्तु मेरी आँखें अच्छी तरह नहीं खुली हैं, इसी कारण मैं उन्हें पानी से धोकर अपनी नींद भगाने का प्रयत्न कर रही हूँ, तात्पर्य यह है कि सब कुछ जानते हुए भी हम वस्तु-स्थिति देखने में असमर्थ रहते हैं। जो हुआ सो हुआ, वर्तमान ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो बात बीत गई, वह लौटकर आ नहीं सकती, भविष्य का हमें पता नहीं है, इसलिये हमें केवल वर्तमान पर ही ध्यान लगाना चाहिये भूत और भविष्य पर हमारा वश नहीं, वर्तमान सामने है, जिस तरह चाहें उस तरह उसका उपयोग कर सकते हैं।

दिव=आकाश। रत्नाकर=रत्नों का घर। तारक=तारे।

पृष्ठ ६४—अबल=कमजोर। स्कन्ध=कन्धे। समीरण=हवा। अदृष्ट=भाग्य-चक्र, विधि-गति। सुधानिधि=चन्द्रमा।

पृष्ठ ६५—पुट=सम्पुट। दूब=हरी घास। तृष्णा=प्यास। इन्दु-कले=चन्द्रमा। अर्णव=सूर्य। लोक-संग्रह=संसार के लोगों को प्रसन्न रखना।

पृष्ठ ६६—तिमिर=अँधेरा। खग=पक्षी।

लदी मोतियों से हरियानी=पेड़ की पत्तियों तथा घास पर ओस की बूँदें शोभा दे रही हैं।

पृष्ठ ६७—मुकुर=दर्पण । मंजु=सुन्दर । पंकज=कमल । पराग=पुष्प-रज, फूल की धूल।

किरणें..........पराग ।

चारों ओर सूर्य की किरणें फैल रही हैं और सवेरा हो गया है। सूर्य की किरणें ओस की बूँदों पर पड़कर अनोखी ही छटा दे रही हैं; उनके प्रतिबिम्ब से किरणों के तरह तरह के रंग दिखाई देते हैं; मेरा दर्पण तेरा मुँह है, मैं तो तेरा मुँह देखकर ही जी रही हूँ। तू, सोकर उठ, तब मैं अपना मुख देखूँ। हे कमल के पुष्प पर पड़ी हुई फूलों की पराग के सदृश मेरे कोमल लाल, उठ ।

वैतालिक=राजाओं को जगाने के लिए स्तुति पाठ करनेवाला। स्वस्ति=आशीर्वाद । गोप=ग्वाला । भाजन=बर्तन । हय=घोड़ा । सित=सफेद । नाग=हाथी । विस्मृत=भूला हुआ । भव=दुनिया । क्षम्य=क्षमा योग्य । तन्द्रा=सोने और जागने के बीच की अवस्था ।

जाग अरे..........तन्द्रा त्याग ।

हे मेरे लाल, तू जग जा । तेरे कारण मैं संसार को भूली हूँ, अपने सब दुःख भूली हूँ; मैंने तेरे सब अधम माफ कर दिए हैं, तुझे देखकर मुझे बचपन की याद आ जाती है, तेरे ही ऊपर मेरी सारी आशाएँ बँधी हैं। मेरे लाल! ऊँघ छोड़कर जल्दी से उठ बैठ ।

मेष=भेड़ । शावक=बच्चा ।

पृष्ठ ६६—अम्बु=माता । प्रणिपात=प्रणाम, झुककर । अवदात=शुद्ध, निर्मल ।

पृष्ठ ७०—डिठौना=काजल की बिंदी, जो माताएँ अपने बालक के मस्तक पर लगा देती हैं कि कहीं नज़र न लग जाए।

लाञ्छित=लक्षण । लोहित=लाल । भाल=मस्तक । अधिर=व्याकुल ।

अंक=गोदी। कलंक-विन्दु=काला टीका कलंक की निशानी है। चन्द्रमा के मध्य कालिमा है। सब उसे कलंकी बताते हैं। मेरे मुख पर जब काला टीका लग जायगा, तो लोग मुझे भी संदेह की दृष्टि से देखने लगेंगे अथवा दोषी एवं अपवित्र समझने लगेंगे।

पृष्ठ ७१ गंगा, गोमती, चित्रा तथा विचित्रा, सभी यशोधरा की सखियाँ हैं।

अलिन्द=मकान के बाहरी द्वार के आगे का छज्जा। पति-परित्यक्ता= पति द्वारा त्यागी हुई। आदिकवि=वाल्मिकि।

पृष्ठ ७२—स्वामी-वंचिता=पति-विहीना। लोकापवाद=बदनामी। अभ्युदय=उन्नति और कल्याण। पूर्वजाओं=उसके पहिले होने वाली स्त्रियाँ। कीट-पतंग=कीड़ा-मकोड़ा।

पृष्ठ ७४—आतुर=व्याकुल। प्रस्तुत=तैयार। वेश-भूषा=पोशाक।

पृष्ठ ७५—आग्रह करना=ज़िद करना, प्रहार करना=चोट करना। विनय=शील, शिष्टाचार=सभ्यता।

पृष्ठ ७७—मंगल मनाना=भला चाहना। संकल्प=काम करने का निश्चय। रोपे थे=लगादे थे। प्रत्यंचा=डोरी। स्तन्य=स्तन, माँ के दूध।

पृष्ठ ७८—यथानियम=अपने आप। विचित्र=अनोखा।

पृष्ठ ७९—तृप्ति=सन्तुष्टि। भार=ज़िम्मेदार।

पृष्ठ ८०—समवयस्क=बराबर की उम्र वाले। डग=कदम। सुध=याद।

पृष्ठ ८१—स्वावलम्बी=अपने पैरों पर खड़ा होनेवाला। पौरुष=पुरुषत्व, बल। अनादर=अपमान।

पृष्ठ ८२—सहपाठी=साथ पढ़ने वाला। देव=देवता दानव=राक्षस। पूर्वजन्म=पहिला जन्म। सहज=आसानी से।

पृष्ठ ८४—आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्=यह वाक्य

'मनुस्मृति' का है। इसका अर्थ है जो बात अपने को बुरी लगती हो वह दूसरों के प्रति न कभी कहो और न कभी करो।

उपयोग = इस्तेमाल। प्रतिकूल = विरुद्ध, । उद्योग = कोशिश।

पृष्ठ ८५— विकसित होना = उन्नति होना। सद्भावना = सुन्दर और श्रेष्ठ भावना। अंचल = आँचल।

पृष्ठ ८६—रुचे = अच्छा लगे। वस्त्राभूषण = कपड़े और गहने। स्वादिष्ट = जायकेदार। अरसज्ञ = स्वाद से अपरिचित।

पृष्ठ ९९—आर्द्र = गीला। अन्तर्दाह = भीतरी जलन। सलिल-प्रवाह = झरने, नदी आदि। पान = पीना। इन्दु = चन्द्रमा। खारी जल-बिन्दु = खारी पानी की बूँदें अर्थात् आँसू।

पृष्ठ ९८-९९ रुदन का हसना..................भगवान्।

यशोधरा दुःख की करुण-कहानी को वास्तविक संगीत समझती है। वह इसका वर्णन इस प्रकार करती है—

दुःख में खुश होना ही सच्चा संगीत है, मेरा हृदय संगीत द्वारा अपने दुःख को प्रकट करता है, मेरा गाना ही रोना है। हृदय की कसक ही संगीत की मींड़ है, जिस प्रकार मींड़ देते समय गवैया दोनों स्वरों को स्पष्ट रखता है, उसी प्रकार मेरे हृदय की कसक सुख देनेवाली कसक है। मेरी आहें तबले के समान उस संगीत को मदद करती हैं। चातक की 'पीव पीव' और कोयल की कूक मेरे आहुति दिए हुए हृदय में आहुति का काम करती है अर्थात् हृदय में जलती हुई है ज्वाला में घी की आहुति का काम करती है। मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल रहे हैं। मेरा यह मौन रहना ही वह मन्त्र है जिसके द्वारा मैं अपने देव को बुला रही हूँ। लता के पत्तों को हिलाकर उन पर की धूल को मत हिलाओ उनके फूलों को चुनकर चुपचाप धीरे से प्रिय के चरणों में चढ़ा दो। फूलों की सुगन्ध ही उनका सब कुछ है। मुझे मत छेड़ो कहीं मेरे मुँह से आह न निकल जाए। मैं मौनरूपी पुष्प ही प्रिय के चरणों में समर्पित

करना चाहती हूँ। मूक वेदना ही मेरा सर्वस्व है। मेघमाला को प्रजनन के समय का दुख हुआ। उसे हँसी आ गई। फलतः बिजली चमकी। उसने पृथ्वी को छुआ और चारों ओर उजाला करके मेघमाला की प्रसन्नता को प्रकट कर दिया बिजली की चमक से यह बात स्पष्ट है कि उसे अपने गर्भ से प्रकट करने के पूर्व होने वाले कष्ट से मेघमाला प्रसन्न है, क्योंकि उसके द्वारा लोक को आलोक प्राप्त होगा। स्वयं दुःख उठा करके ही लोक-कल्याण किया जा सकता है, और उस दुःख में प्रसन्नता का अनुभव करना ही सच्ची साधना तथा उपासना है।

ऐसा कहा जाता है कि पर्वतों के भीतर अग्नि जला करती है। उसी को लक्ष्य करके यशोधरा कहती है कि यदि अपने भीतर प्रज्वलित अग्नि के कारण पर्वतों में उत्साह न आता तो लोक का कल्याण करनेवाले प्रजाजन को पीने तथा स्नानादि के लिए जल देने वाले स्वच्छ जल के झरने और उनमें से मधुर कलकल की ध्वनि कहाँ से निकलती ?

यशोधरा कहती है कि दुःखी होकर प्राकृतिक पदार्थ तो लोक को कल्याणकारी वस्तुएँ प्रदान करती हैं, किन्तु मेरा भाग्य उल्टा है। यदि भाग्य-चन्द्र ही सीधा होता, तो उसमें से अमृत टपकता; परन्तु उल्टा हो जाने से उसमें से आँसू निकल रहे हैं। प्रकृति के विधान के अनुसार मेरी आँखों में से मीठे जल का झरना बह निकलना चाहिए था, परन्तु ऐसी भी न हुआ। बात एक दम उल्टी हुई। उनमें से खारी जल का बहाव तो रहा है। इस खारी जल को कोई भी पान न करेगा और यह व्यर्थ ही बह जायगा वृक्ष के वियोग से दुःखी होकर लता ने पूजा के लिए पुष्प दिए, आकाश के वियोग से दुःखी होकर बादलों ने लोक में उजाला करने के लिए बिजली दी, पर्वत ने दुःखी होकर प्रजाजन के लिए-

जल-प्रवाह सुलभ किया, और मैंने दुःखी होकर खारी जल के आँसू बहाए जो किसी के नहीं हैं। अपने दुःखों पर हँसना ही सच्चा संगीत है।

पृष्ठ १०५—कूल=किनारे। एकाकी=अकेले। एकदेशता=समानता। सृष्टि=संसार।

पृष्ठ १०७—सयत्न=कोशिश करके, यत्न-पूर्वक। मिलन-शून्य=मिलनरूपी आकाश। विरह-घटा=विरह की घटा।

दाडिम=अनार। विफल=व्यर्थ। शम=मन और इन्द्रियों का निग्रह। दम=इन्द्रियों और मन को रोकना। व्याधियों=विपत्तियों। विश्रान्ति=विश्राम, आराम। संयम=इन्द्रिय-निग्रह, मन पर काबू। निर्मम=निर्दय। भव=संसार।

यदि..........भाऊँ।

अगर हम नियमों का पालन करते रहें और अपने मन तथा अपनी इन्द्रियों एवं उनके विषय-भोगों पर पूरा अधिकार रखें, तो हम सदैव एक समान रूप से प्रसन्न रह सकते हैं। जो सुख में भोगता नहीं, तो दुःख में उसे किस बात का अभाव होगा? जिन्हें लोग सुख और दुःख कहते हैं, उन्हें साधक एक ही समान समझते हैं, क्योंकि उसकी दृष्टि में उनमें कोई अन्तर नहीं होता है। इसी कारण वह सदैव प्रसन्न रहता है, क्योंकि उसे कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं रहता है। संयमशील व्यक्ति के लिए बुढ़ापा आराम का समय है और मृत्यु एक नवीन-जीवन का दरवाज़ा है। नई साधना के लिए नया जीवन देने वाली मृत्यु क्योंकर कठोर हुई? लोक की दृष्टि में मृत्यु सुख-भोग छीनती है, इसी कारण यह निर्मम है। साधक की दृष्टि में वह अधिक शक्ति के साथ अपने कार्य में रत होने का मार्ग दिखलाती है, इस लिए निर्दय नहीं है। साधक की सबसे बड़ी इच्छा यही होती है कि मुझे सारे जगत् और उसके सभी निवासी प्रिय लगने लगें और मैं उनका प्यारा बन जाऊँ! इसलिए फिर

मैं इस मुक्ति को लेकर क्या करूँगा ! विश्व-प्रेम से अधिक सुख-दायिनी मुक्ति न हो सकेगी !

पृष्ठ १०८—जरा-मरण=बुढ़ापा और मृत्यु। विभ्रम=चक्कर देकर। भावी पीढ़ी=भावी सन्तान। आत्मरूप=अपना स्वरूप। नीरद=बादल। पथ्य हेतु=औषधि रूप में, बीमार का भोजन। समुचित=विशेषरूप से ठीक। विधान - विहित=नियमानुकूल। तपस्ताप=तप का ताप।

रस एक मधुर············सदैव मनाऊँ।

सभी खाने-पीने की चीज़ें मीठी तो नहीं होती हैं; अनेक प्रकार के उनमें स्वाद होते हैं, कुछ खट्टी होती हैं, कुछ चटपटी; कुछ नमकीन होतीं हैं, कुछ कसैली, मीठी आदि। कुछ वस्तुओं का प्रयोग केवल जीभ के ज़ायके के लिए ही किया जाता है और कुछ का प्रयोग औषधि रूप में किया जाता है। इन्द्रियों को नियम के अनुसार भोग करना चाहिये। रोगी यदि स्वाद के लिए मन-चाही वस्तुओं का प्रयोग करने लगे, तो कुपथ्य है उसके लिए वे रस न होकर विष बन जाएँगी। इसी प्रकार इन्द्रियों के भोग में सदैव संयम होना चाहिए। जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को जीत लेता है, केवल आवश्यकतानुसार ही विषय-भोग करना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है, वह विश्व को विजय कर लेता है। इसलिए मैं भगवान् से सदा यही प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे अपने कर्तव्य पालन करते रहने की शक्ति दे। मुझे मुक्ति,भुक्ति कुछ भी नहीं चाहिए।

पृष्ठ १०९—विभाव=भावों को उद्दीप्त करनेवाली वस्तुएँ। कैवल्य=मोक्ष। काम=इच्छा। शतवार=सौ बार। क्षेम=सुख।

आओ············गाऊँ।

हे प्रियतम ! आओ, आप और मैं दोनों ही संसार को प्रेम-भाव से भर देंगे। चाहे अपने काम में हम सफल हों, या न हों,

फिर भी हमारा नाश न होगा । अपना कर्तव्य हमको करना चाहिए। हमें चाहिए कि सर्वथा निष्काम होकर काम करें; क्योंकि मुक्ति, मोक्ष की इच्छा करना ही काम-इच्छा है। मोक्ष की इच्छा से किया हुआ कार्य 'निष्काम-कर्म' नहीं होता है। संसार के कल्याण के लिए प्राणी मात्र की सेवा करने के लिए बार,बार मरने और जन्म लेने में हमें प्रसन्नता होगी, विश्व की सेवा करने के लिए हमें मुक्ति-प्राप्त से सौ बार मरना अधिक प्रसन्नता की बात होगी। मैं प्रेम-संगीत और संदेश सुनाती रहूँगी और तुम उन्हें श्रवण कर सुखी होना। ऐ मुक्ति! मैं तुझे प्राप्त करके क्या करूँगी! तात्पर्य यह है कि विश्व-सेवा और मानव-जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए! जीवन की चरम सफलता प्राणी-मात्र की सेवा है।

खला=बुरा लगा, खटका। भव-नाट्य=संसाररूपी नाटक। कला=खेल। भुवन=संसार। आशंकाएँ=भावी अनिष्ट के विचार। अवश=विवश। अधीना=दूसरे के बन्धन में। चिरलीना=हमेशा लीन रहनेवाली।

पृष्ठ ११०—सजनी=सखी। शोणित=रक्त। वर्ण=रङ्ग। भांवरा=झांया। पैठा=बैठा हुआ। विलपना=रोना। अचल=चलने योग्य न था। सुरसरिजल=गंगा जल। अमृतोदन=अमर करने वाली वस्तु। कलपना=तड़पना।

पृष्ठ १११—विहंग=पक्षी। अन्तरंग=अन्तःकरण। वंचक=धूर्त, छली। विधि=विधाता। प्रत्यय=विश्वास, निश्चय।

पृष्ठ ११२—दिव्य=श्रेष्ठ। वात=हवा, आंधी। उत्तुङ्ग=ऊँचा। गिरा=वाणी। अपारा=जिसका पार न हो, अनन्त। प्लावित=भर दे, तृप्त कर दे। अंग=स्थावर, जड़-जङ्गम। अवदात=शुद्ध, पवित्र।

पृष्ठ ११३—यतियों=योगियों। व्रतियों=साधकों। अभय=निडर। भूधर-भूप=पर्वतों के राजा। कूप=कुआ। खाही=गढ़ाह।

परा=पराई स्त्री । मिथ्या भय है जन्म-जरा के=जन्म और बुढ़ापे से डर करना व्यर्थ है।

पृष्ठ ११४—वधू=पत्नी । पूर्ति वासना=काम तृप्ति । धर्म धन=धर्म पति । ध्रुव धरि=धैर्यवान् तथा अपने निश्चय पर अटल रहने वाले । पकवा=पकवान । मृग=हिरन । केकी=मोर । कीर=तोता । व्रत=नित्य-नियम । ललित=सौम्य स्वरूप वाले । गण्य=गिनी जाने वाली, प्रतिष्ठित । वार दूँ=न्यौछावर कर दूँ । लोकार्थ=लोक का कल्याण करने के लिए । पावन=पवित्र करने वाला । चीर=चद्दर।

कुटिल·········शरीर

हे गंगा तेरे जल की निर्मलता एवं पवित्रता के कारण लोक तेरी इस टेढ़ी चाल को भी बुरा नहीं कहता है । पवित्रकारी होने से तू लोक के लिए पवित्र, आदर की पात्र बनी हुई है। मेरा भी मन होता है कि तेरे निर्मल जल के ऊपर अपनी मोतियों और हीरों की यह माला निछावर कर दूँ । तू लोक का कल्याण करने के लिए बहती चली आ रही है। तेरे शान्त जल को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानों तूने एक सुन्दर ओढनी ओढ़ रखी है। मैं तो किसी योग्य न रही, केवल रो लेती हूँ । सिवाय रोने के मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ ।

पृष्ठ ११५—नदीश=समुद्र । प्रदीप-दान=दीपमालिका । तुच्छ=छोटा सा । सन्धान=लक्ष्य, निशाना । धाय=दाई । पद्मिनी=कमलिनी । छीन=क्षीण, दुर्बल । पीन=पीण, तगड़ा ।

पृष्ठ ११६—साले=कसक पैदा करता है, काँटे सी लगती है ।

पृष्ठ ११५-११६—जन के ······ नवीन ।

अपनी दुखिया माता को सम्बोधन करके राहुल कहता है कि—"माँ, मछलियाँ तो पानी में ही रहती हैं । तेरी आँखें भी मछलियों की जैसी हैं । ये सदा पानी से भरी रहती हैं—परन्तु फिर भी मुर-

भाई एवं दुःखी बनी रहती है। तू कमलिनी के समान सुन्दर और कोमल है, परन्तु फिर भी इतनी दुबली क्यों है? तेरा मन तो सदा साहस से भरा रहता है, परन्तु तेरा शरीर नीरस तथा मन्द पड़ा हुआ है। दूध से भरा हुआ शरीर तो तूने मेरे लिए लगा दिया है तथा अपने प्रेमी मन को पिता जी के ऊपर निछावर कर दिया है। बड़े दुःख की बात है कि तेरा एक मात्र सहारा त्याग है, अर्थात् सारा जीवन क्या तुम्हें योंही इसी प्रकार व्यतीत करना पड़ेगा? मैं लाचार हूँ, मैं तेरे लिए कुछ नहीं कर सकता, मेरे जीवन को धिक्कार है।" अपने बेटे की करुणा-भरी बात सुनकर यशोधरा उत्तर देती है—"हे मेरे लाडले! पुरानी बातें मेरे हृदय में काँटे की तरह सदैव चुभी रहती हैं। परन्तु तुम्हें उनसे क्या मतलब? तेरा बाल बाँका भी न हो पायगा। मैं तेरे हित-साधन में सदैव लगी रहूँगी, तू नित्य नई उन्नति करता जा।"

पृष्ठ ११७—रस-रंग=आनन्द। सती=दक्ष की पुत्री पार्वती का नाम सती था। शिवा=शिव की पत्नी। दिवा=दिन। सौध=महल। शिखर=चोटी, ऊपर का भाग। आतप=धूप। तुहिन=पाला। शचि=शुभ। सुरभि=सुगन्ध। अदृश्य=दिखाई न देने वाले, आँखों से दूर। धा रही=आ रही, घुस रही। नलिनी=कमलिनी। छवि=शोभा। मौन=चुपचाप। अंक=गोदी। मधुप=भौंरा, भ्रमर। गिरा=वाणी।

सती·········गा रही।

प्रातः समय की शोभा देखकर राहुल अपनी माता से कहता है कि—

माँ! देख यह स्वच्छ उषा ऐसी लग रही है, जैसे शिवजी की पत्नी सती। वह तेरे समान ही गम्भीर है तथा विचार-मग्न है, महल के ऊपरी भाग पर की सुनहली धूप ऐसी लग रही है जैसे तेरे अंचल की मेरे ऊपर छाया हो। जिस तरह तेरी आँखों से

आँसू की बूँदें गिरती हैं उसी प्रकार किरणों की गर्मी ने पाले की छोटी-छोटी बूँदें नीचे को गिरती हैं। पवित्र स्नेह एकाग्र होकर मानों तप रहा है। ठण्डी और धीरे-धीरे बहनेवाली हवा वन की ओर से तरह-तरह की सुगन्धि ला रही है; ऐसा मालूम होता है कि दूर ठहरे हुए पिता को अनुभूति तेरे भीतर प्रवेश करती चली जा रही है। सूर्य को कमलिनी देखती है, तू पिता की छवि को मौन रूप में स्मरण करके उसी की ओर देख रही है। कमलिनी के कोष में भ्रमर है तेरी गोद में मैं बैठा हूँ। दोनों बातें एक ही हैं। वाणी चाहे कमलिनी के गुण गाए, चाहे तेरे गुणों का बखान करे।

इस छन्द में गुप्त जी ने यशोधरा और कमलिनी में पूर्ण साम्य स्थापित किया है। कमलिनी में बैठे भौंरों की भाँति राहुल को उसकी गोदी में बैठा बताया है।

पृष्ठ ११८—सन्धान=निशाना। अबोध=अज्ञान। मरण-चौरासी= चौरासी लाख जन्म मरण। तितिक्षा-सहनशीलता, क्षमा।

पृष्ठ ११६—शतदल=कमल। दो दो मेघ बरसने=दोनों आँखों से आँसू बह रहे हैं।

जल में शतदल..........वनवासी।

ऐसा नहीं है कि घर में रह कर तुम केवल घर के हो बन जाते और भगवान् की उपासना, पूजा न कर सकते। जिस तरह कमल पानी में रहने पर भी पानी से ऊपर रहता है, उसी प्रकार तुम भी घर में रहकर गृहस्थी के चक्करों से दूर रह कर उसमें निर्लिप्त रह सकते थे। तुम घर पर होते, तो हम लोग तुम्हें देखने को क्यों तरसते? देखो, हे प्रियतम! यहाँ दो-दो बादल बरस रहे हैं, मेरी दोनों आँखों से अविरल आँसू बहते चले जा रहे हैं। एक ही बादल के बरसने से लोक की प्यास बुझ जाती है। यहाँ दो-दो बादल बरसते हैं, फिर भी मैं प्यासी ही हूँ—कैसी है यह विडम्बना तुम स्वयं देखो न! तुम्हारे दर्शनों की इच्छा में मैं बराबर रो रही

झूठे सब नाते··············जा।

विश्व के जीवमात्र तेरी दया के पात्र हैं। संसार के एक जीव हम भी हैं। इसीलिये आकर हमें इस विपत्ति से उबार लो। पिता, पत्नी आदि के नाते से नहीं आता है, तो न आए, क्योंकि तेरे विचार से वे तो सब झूठे हैं।

पृष्ठ १२७—बद्ध = बन्धन। निर्गुण = निराकार, पाद-पद्म-मधु-पान = चरण कमलों का चरणोदक पान करूँगा। नश्वर = नाशवान्।

अमर-पद-लाभ = जीवन-मरण के चक्कर से मुक्त हो गए। अमिताभ = बुद्धदेव। अंजलि = हाथ। भाजन = बर्तन। तुल्य दृष्टि = सबको समान दृष्टि (भाव) से देखने की शक्ति, तुम्हारे लिए सब समान हैं। अपेय = न पीने योग्य, अग्रहणीय। पाथ = जल।

पृष्ठ १२९—खार = खारीपन। आँगें भरना = रो देना। धव = पति। फबना = शोभा पाना। उद्भव = उत्पत्ति, जन्म। नवता = नवीन। प्रतिपाल = रक्षक। बेला सी = प्रलयकालीन समय के समान। धुलूँ = पवित्र हो जाऊँ।

पृष्ठ १३०—अनुपम उद्योगी = अनोखा प्रयास करनेवाले। जनार्दन = भगवान्। विभव = सुख-सम्पत्ति। पराए = दूसरों के।

पृष्ठ १३१—कन्था = गुदड़ी, कथरी। जाया = पत्नी। यति = जोग। घटा = जल भरे बादल। ग्रीवा = गर्दन। शिखण्ड = मोर की पूँछ। शिखी = मोर। गिरा = वाणी।

आली··········आशा रखो भाई!

गौतम को सिद्धि तो मिली, परन्तु उन्होंने अपनी पत्नी यशोधरा को अपनी दया से अलग ही रखा। इसीलिये यशोधरा का मन गिरा है। इसी मन का लक्ष्य करके वह कहती है कि हे स्वामी पुरुष दया तो चली, परन्तु यानी सन्देशसे बादल न आए, दया के व्यवहार को देखकर हे चातक! तूने स्वाति-जल के लोभ

उसने ही गर्दन ऊपर करके चोंच खोली। यहाँ बादल और वर्षा पड़ी है। मोर का भी यही हाल हुआ। हवा का बहाव देखकर वह समझा था कि अब बादल घिर आएँगे और वर्षा होगी। इसी लिये प्रसन्नतावश नाचने के लिए उसने अपनी पूँछ उठाई परन्तु बादलों को न देखकर वे भी अपना मन दुःखी कर रह गए और उसने अपने पंख नीचे कर लिए, वे न तो नाचे और न कूदे। भाई जब प्रकृति ही उल्टी हो जाए तो फिर किसी की क्या चल सकती है! परन्तु हमें फिर भी निराश नहीं होना चाहिए। प्रकृति के ऊपर परमात्मा है। वह उसका निर्माणकर्ता है। वह सब कुछ ठीक कर देगा। यदि प्रकृति उलटी है, तो हो जाने दो। परमात्मा उसे अवश्य ही ठीक रास्ते पर लगा देगा। पुरवा हवा के साथ इस समय घटा नहीं आई, तो मत आने दो। वह अब थोड़ी देर पश्चात् आ जायगी, गौतम अभी नहीं आए, न सही। भगवान् शीघ्र ही उन्हें आने के लिए प्रेरणा करेंगे। मैं इसी आशा पर जी रही हूँ, तुम सबको भी भगवान् की शक्ति और न्याय में विश्वास रखना चाहिए।

पृष्ठ १३२—प्रत्यय=विश्वास। स्थिर है जीव=प्राण बने हुए हैं। प्रेरा=प्रेरित।

पृष्ठ १३३—आलोक=प्रकाश। दरसाय=दिखाई दे। धूलि-धूसरा=धूल से सनी हुई। गौरिक दुकूलिनी=गेरू के रंग की ओढ़िनी ओढ़े हुए। सुधांशु=चन्द्रमा।

आई..........अश्रु छलके।

गौतम बुद्ध की राह तकते-तकते पूरा दिन व्यतीत हो गया। संध्या हो गयी। राहुल अपनी माँ से कहता है—"माँ हो गाएँ वन से लौटने लगी हैं, उनके चरणों की धूलि के कारण आकाश आच्छादित हो रहा है। इस समय की संध्याकालीन शोभा और तेरे मुख की शोभा में समानता दिखाई देती है। तेरा मुख मलिन

है। क्षितिज में धूल उड़ने से संध्या का मुख भी मैला हो गया है। तू गेरुए कपड़े पहिने है, सन्ध्या-समय का आकाश भी गेरुआ होता है। ढलती हुई सन्ध्या का आकाश लाल रंग का ही होता है, ऐसा लगता है कि सन्ध्या ने लाल रंग की ओढ़नी ओढ़ रक्खी है। इस समय आकाश में दो तारे दिखाई देने लगे हैं; तेरी दोनों आँखों में भी आँसू की बूँदें दिखाई दे रही हैं। उधर संध्या-कालीन आकाश का वर्ण लाल है, इधर यशोधरा ने भी गेरुए वस्त्र पहन रखे हैं।

कवि ने संध्या-समय के आकाश की तुलना यशोधरा से की है। दोनों में समानता दिखाई है।

पृष्ठ १३५—वराकी=बेकारी। बालुका=बालू। घात=हत्या।

पृष्ठ १४०—भेरी=आवाज, बाजों की आवाज़। स्वागत-भेरी=स्वागत के हेतु किए जानेवाले गाजों-बाजों के शब्द।

पृष्ठ १४१—कपिलनगर नरराज=कपिलवस्तु के राजा सिद्धार्थ। गाज=बिजली। अजिर=आँगन। अपवर्ग=मोक्ष, मुक्ति।

पृष्ठ १४३—बान=ज़िद। तत्रभवान=पूज्य, माननीय। आर्त्त=दुखी। गुह=भीलराज निषाद। प्रतिदान=बदला। सुधा-सन्धान=अमृत के समान श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति। मैत्री=मित्रता, स्नेह।

पृष्ठ १४४—उपालम्भ=उलाहने। आभा=छाया। प्रणति=विनती। प्रणय=विश्वास। परिणति=फल। पक्ष्म=आँख की बरौनी।

पृष्ठ १४६—पैतृक दाय=पैतृक सम्पत्ति। असत् से सत्=मिथ्या से सत्य की ओर ले जाओ। तिमिर से ज्योति=अंधेरे से उजाले की ओर चल। (तमसो मा ज्योतिर्गमय)। अनुरूप=योग्य।

पृष्ठ १४७—बुद्ध ……… ……गच्छामि=बौद्धों की प्रार्थना है—बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण में मैं जाता हूँ। मैं बुद्ध द्वारा प्रवर्तित पथ की शरण में जाता हूँ। मैं बुद्ध द्वारा प्रवर्तित पन्थ की शरण में जाता हूँ।

समाप्त

सम्भावित प्रश्न

(१) यशोधरा किस प्रकार की रचना है? पूर्ण रूप से समझाइए।

(२) गुप्त जी के सभी काव्य-ग्रन्थों में 'यशोधरा' का कैसा स्थान है? वर्णन कीजिए।

(३) नारी भावना का जो प्रदर्शन गुप्त जी ने यशोधरा में किया है, उसका वर्णन उदाहरण-सहित कीजिए।

(४) यशोधरा में गुप्त जी ने यशोधरा के विरह-वर्णन में कहाँ तक सफलता पाई है, पूर्ण रूप से अपने विचार प्रकट कीजिए।

(५) यशोधरा में 'प्रकृति-चित्रण' सुन्दर हुआ है। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(६) साकेत की उर्मिला और यशोधरा की यशोधरा में तुलना कीजिए और यह निश्चय कीजिए कि कौन दोनों में श्रेष्ठ है?

(७) गुप्त जी ने यशोधरा में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों का बहुत ही अच्छा समन्वय किया है, स्पष्ट कीजिए और उदाहरण भी दीजिए।

(८) यशोधरा में आधुनिकता का चित्र खींचिए और स्पष्ट कीजिए कि आधुनिकता का कहाँ तक समावेश है।

(९) गुप्त जी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपनी धार्मिक भावनाओं का प्रत्यक्षी करण किया है। स्पष्ट कीजिए।

(१०) यशोधरा काव्य-ग्रन्थ में राहुल का स्थान निश्चित कीजिए।

(११) यशोधरा में सांस्कृतिक आधार पर अपने विचार प्रकट कीजिए।